# THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_178810
UNIVERSAL LIBRARY

# बेकरी का मालिक

# बेकरी का मालिक

गोर्की की कृति 'The Boss' का हिंदी अनुवाद

अनुवादक
नूरनबी अब्बासी

नव युग प्रकाशन
दिल्ली

हवा का बवण्डर रूखे-सूखे बर्फ़ के टुकड़ों, घास के पूलों और लकड़ी के छिलकों का एक भँवर सा बनाता हुआ आँगन में वेग के साथ घुस आया। और उस अँधड़ के बीच एक गोल-मटोल, थल-थल आदमी, खड़ा हुआ नजर आया जिसके शरीर पर टखनों तक नीची धारीदार तातार कमीज थी और पैरों में रबर के ऊँचे जूते। उसने हाथ स्थूल तोंद पर बांध रखे थे और वह बड़ी तीव्रता से अपने दोनों हाथों के मोटे-मोटे अंगूठे अमेठ रहा था। उसने अपनी असमान दानेदार आँखों से जिनमें दाहिनी मँजरी थी और बायीं फुल्ली, मुझे घूर कर देखा और गरज कर कहा :

"चल भाग बे—कोई काम-वाम नहीं है यहां ! जाड़ों में भी कहीं काम मिलते सुना है ?"

उसके सफाचट, झुर्रियोंदार चेहरे पर ग्लानि के भाव उभर आये। उसकी पीली मूँछों के चंद बाल ऊपरी होंठ पर सहसा झुके और निचला होंठ उसके चिड़चिड़े स्वभाव के कारण नीचे को दबा और उसके छोटे-छोटे दांतों की पंक्ति नजर आई। नवम्बर का महीना था। सर्द हवा के तेज झक्कड़ चल रहे थे जिन्होंने उसकी भारी भवों वाले माथे के महीन बालों को बिखेर दिया था। प्रचंड वायु के झोंको से उसकी पोशाक उड़ रही थी और घुटनों तक उसकी मोटी-मोटी चिकनी गावदुम टाँगे खुल गई थीं जिन पर पीले रंग के रोवेंदार बाल उगे हुये थे। पर उसे कुछ भान ही न था बल्कि उससे तो यही प्रकट होता था कि वह फूहड़ शख्स पतलून पहनना भी नहीं जानता। उस व्यक्ति के अत्यन्त कुरूप चेहरे में भी एक अजीब आकर्षण था और उसकी मंजरी आँखों की पलकों में एक अविचारणीय अपमान के भाव निहित थे। मुझे कोई

जल्दी थी नहीं चुनाँचे मैंने सोचा इससे कुछ गप्प ही लगाऊँ। मैंने पूछा :—

"तुम क्या यहाँ के दरबान हो ?"

"चल-चल, रास्ता ले अपना। तुझे क्या मैं कुछ भी हूँ·····"

"अरे भाई मेरे, तुम पतलून-वतलून पहने नहीं हो, सर्दी लग जायेगी न तुम्हें·····?"

भवों की जगह जो लाल-लाल दाग थे ऊपर को तन गये, बेमेल आँखें कुछ अजीब ढंग से तरेरीं और उस आदमी का शरीर कुछ इस कार आगे को झुका कि ऐसा लगा अब गिरा, अब गिरा।

"और कुछ कहना है ?"

"भई तुम्हें सर्दी लग जायेगी, तुम मर जाओगे !"

"तो फिर ?"

"फिर कुछ भी नहीं।"

"बस तो बहुत हो गया !" उसने अंगूठों की अमेठन थामी और गरजा। फिर उसने अपने हाथ खोल लिये, चाव से अपने कूल्हे थपथपाये और मेरी ओर झुककर मुझसे पूछा :

"यह सब तुमने किसलिये कहा ?"

"अरे योंही कह दिया। अच्छा यह बताओ मालिक वासिली सेम्योनोव से मैं मिल सकता हूँ क्या ?"

उसने एक ठण्डी सांस भरी और सिर से पैर तक अपनी मंजरी आँख से मुझे जाँचते हुए वह बोला :

"मैं ही तो हूँ। ·····"

मेरी तो पैरों तले जमीन खिसक गई, नौकरी की सारी आशाएँ धूल में मिल गईं। सहसा जिस्म में कटकटाती हवा की सर्द लहरें दौड़ गईं और मेरे सामने खड़ा आदमी बड़ा ही घिनावना लगने लगा।

"अब बोलो ?" उसने मुझे तिरछी नजरों से देखते हुये कहा। "दरबान कहा था न, ऐं ?"

अब चूँकि वह मेरे बिलकुल नज़दीक खड़ा था मैंने यह जाँच लिया कि वह नशे में धुत्त है। उसकी आँखों के ऊपर वाले लाल गूमड़ों पर बड़े महीन पीले रोएँ उगे हुये थे और वह कुल मिलाकर एक भयानक चूज़े जैसा दिखाई दे रहा था।

"निकल जाओ यहाँ से !" उसने आनंदित हो कहा और शराब की गंध के बादलों में मुझे ढँक दिया। साथ ही उसका ठूँठ जैसा बाजू हिला और उसकी बंधी हुई मुट्ठी ऐसी नजर आई जैसे शेम्पेन शराब की डाटदार बोतल हो। मैं मुड़ा और आहिस्ता-आहिस्ता फाटक की ओर चल दिया।

"अरे सुनना ! तीन रुबल महीने पर काम करेगा ?"

तो क्या मुझ जैसा १७ वर्षीय हृष्ट-पुष्ट, शिक्षित लड़का उस मोटू शराबी के यहाँ १० कोपेक रोजाना पर काम करने लायक था ? लेकिन जाड़ों का मौसम था—ठिठुर के रह जाता मैं। फिर दूसरा चारा भी क्या था। चुनांचे बड़े अनमने और जब्र से मैंने कहा :

"अच्छा, करूँगा।"

"पासपोर्ट है ?"

मैंने झट अपना हाथ अन्दर की जेब में डाला लेकिन मेरे मालिक ने अपना बाजू हिलाया और बुरा-सा मुँह बनाकर मना कर दिया।

"रहने दो, रहने दो ! क्लर्क को दे देना। जाओ अन्दर चले जाओ .....वहाँ साश्का को पूछ लेना··· "

दुमंजिला इमारत की धुँआ भरी दीवार पर एक जर्जर सायबान के नीचे दरवाजे में किवाड़ एक ही चूल पर टिके हुये थे। मैं दरवाजे में दाखिल हुआ और आटे के बोरों में से गुजर कर एक तंग व अँधियारे कोने में पहुँचा तो खट्टी, गर्म और भूख दिलाने वाली भाप मेरे नथुनों से टकराई। सहसा आँगन में से आती हुई भयानक आवाजें मेरे कानों पर पड़ीं--ऐसा लगा कि लोग पैरों से धम-धम कर रहे हैं और घरर-घरर की आवाज निकाल रहे हैं। बरामदे की दीवार की एक दरार से अपना मुँह लगाये मैं भौचक्का हो खड़ा रहा। वहाँ क्या देखता हूँ कि

मेरा मालिक अपनी कुहनियाँ कूल्हों पर जमाये आँगन में इस प्रकार कूद-फाँद कर रहा है जैसे कोई अदृष्ट घोड़े सधाने वाला घोड़े को चाल सिखा रहा हो। उसकी पेशियां और मोटे, गोल-मटोल घुटने खुले हुए थे, उसकी तोंद और थल-थल गाल फड़क रहे थे, उसका मछली जैसा मुहँ सिकुड़ गया था और वह ज़ोर-ज़ोर से खाँस-खाँस कर बेदम हुआ जा रहा था।

"खा,खा .. ..."

आँगन संकीर्ण था और चारों ओर टूटी-फूटी बेढंगी कोठरियाँ बड़ी अस्त व्यस्त-सी बनी हुई थीं जिनके दरवाजों पर कुत्तों के सिरों-जैसे बड़े-बड़े ताले लटके हुये थे। बारिश से भीगकर ऐंठे हुये पेड़ की दर्जनों ग्रंथियाँ अंधों की नाईं दीख पड़ रही थीं। आँगन के एक कोने में छत तक शकर के खाली पीपे अटे हुये थे जिनके खुले हुये गोल मुँहों में से तिनके झांक रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आँगन को कूड़ाघर की तरह इस्तेमाल किया जाता है और हर प्रकार का काठ-कबाड़ वहां फेंक दिया जाता है।

और घास-फूस के भँवर लकड़ी के छिलकों और छेपटों के नाचते हुये छल्लों के दरम्यान यह भारी भरकम जिस्म वाला, मोटा-ताजा और अजीब शख्स आँगन के पथरीले फर्श पर अपने भारी जूतों की धमधम करती आवाज के साथ कूद रहा था और खाँसता जा रहा था मानो वायु के झोंकों की सरसराहट से ताल मिला रहा हो।

"खा, खा खा।..... "

कोने के पीछे कहीं से कुछ सुअर क्रोधित हो चीख-चिल्ला रहे थे मानो उसकी धमाचौकड़ी पर अपनी प्रतिक्रिया दर्शा रहे हों। कहीं कोई घोड़ा साँस ले रहा था और धम-धम कर रहा था और दूसरी मंजिल पर किसी कमरे की रोशनदान की छोटी खिड़की में से कोई लड़की दुर्बल स्वर में गा रही थी :

"काहे भये उदास प्रियतम,"

हवा पीपों में ठुँसी घास में घुस कर सरसरा रही थी। लकड़ी की एक

खपच बड़ी तेजी से फड़फड़ा रही थी। कबूतर खलिहान की एक ओलती में एक दूसरे से लिपटकर बैठे अपने जिस्म को गर्मा रहे थे और बड़ी दीनता से गुटर गूँ कर रहे थे·····।

यहाँ का वातावरण कुछ अजीब गड़बड़ सा था और उसके बीचो-बीच पसीने में शराबोर, हाँफता-काँपता यह ऊलजलूल शख्स नाच रहा था जिसकी शक्ल-सूरत का मैंने और कोई पहले कभी न देखा था।

"जान पड़ता है में किसी अच्छे-खासे झमेले में फँस गया हूँ!" मुझे कुछ संदेह हुआ और मैं सोच में पड़ गया।

तहखाने की खिड़कियों पर तार की जाली लगी हुई थी और वहाँ की मेहराबदार छत में भाप और तम्बाकू के धुएँ के मिले-जुले बादल छाये हुये थे। उस स्थान का वातावरण अंधकारमय था, खिड़कियों के शीशे टूट गये थे जिनपर अन्दर से सने हुये आटे के लोंदे लगे थे से कीचड़ थुपी हुई थी। कोनों में चीथड़ों के मकड़ी के जाल जैसे झण्डे जिन पर खाने की जूठन लिथड़ी हुई थी, पड़े थे और गंदगी का यह आलम था कि धूल की तहों में एक काली मूर्ति इतनी अट गई थी कि नजर आना मुशकिल हो गया था।

एक बहुत बड़े तंदूर में से जो नीची मेहराब का था सुनहरी लपटें निकल रही थीं। उसी के सामने बद-हवास पाश्का बजारा खड़ा लम्बे हत्थे वाला बेलचा चूल्हे के पत्थर पर रगड़ रहा था। यही नानबाई उस कारखाने का दिल व दिमाग था—नाटा कद, मांगदार छोटी दाढ़ी और बला के चमकते हुए सफेद दाँत—यह थी उसकी आकृति। वह एक ढीली-ढाली बिना कमरपट्टी की रंगीन अधबहियाँ पहने हुये था। उसके खुले हुये वक्ष पर महीन बालों के गुच्छों में हवा गुदगुदी कर रही थी। वह इस लिबास में किसी मदिरालय का नट दिखाई देता था। उसके पैरों पर चढ़े भारी, जीर्ण-शीर्ण बूट जो उसकी सुडौल टांगों में ढले हुये लोहे की नाईं लग रहे थे, देख कर दुख होता था। वह

आनन्दमग्न हो चीख-चिल्ला रहा था और उसकी वे चीखें उस तहखाने के उदासीन वातावरण में गूँज रही थीं।

"सेको और उबालो!" एक ही सांस में असंख्य गालियाँ देते हुये वह चिल्लाया और अपने घुँघराले बालों वाले सुन्दर माथे से पसीने की बूंदें पोंछीं।

खिड़कियों के नीचे दीवार के सहारे लगी लम्बी मेज़ पर अठारह मजदूर बैठते, और 'बी' के आकार की आधी-आधी छटांक की छोटी-छोटी नमकीन नानखताइयाँ बनाते हुये दायें-बायें हिलते-डुलते रहते थे। मेज के एक किनारे दो आदमी सफेद गुँधे हुये आटे की लम्बी पट्टियां काटते थे, अपनी उँगलियों से उसके बराबर-बराबर पेड़े बनाते और उन्हें मेज़ के दूसरे सिरे पर बैठे मज़दूरों के हाथों में पहुँचा देते। ये हाथ इतने फुर्तीले होते थे कि उनकी हरकत मुश्किल से दीख पड़ती थी। आटे को नानखताई की शक्ल में ढालने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को उसे हथेली से थपथपाना पड़ता और यह कार्य ऐसी ताल के साथ होता कि सारा भटियारखाना हल्की-हल्की पट-पट की आवाज से गूँजने लगता था। मेज के पहले सिरे पर मैं बनी हुई रोटियों को ट्रे में रखता जाता और जब वह भर जाती तो लड़के उसे उठाकर बाइलर के पास ले जाते जो उन्हें उबलते हुये पानी की कढ़ाई में डाल देते जहां से एकाध मिनट बाद वह उन्हें ताँबे के एक करछुल से बाहर निकाल कर एक रांगा चढ़ी हुई बड़ी तांबे की परात में डाल देता। फिर आटे के चिकने-चिकने, गरम पेड़ों को ट्रे में रख देता, नानबाई उन्हें चूल्हे पर सुखाता फिर निकाल कर अपने फावड़े पर जमाता और और बड़ी दक्षता के साथ उन्हें तंदूर में फेंक देता जहाँ वे सिक कर कुरकुरे और कत्थई रंग के बनकर तैयार हो जाते।

जब नानखताई मेरे पास आ जातीं उस समय यदि मेरी ओर से जरा सी भी काहिली बरती जाती तो वे बिगड़ जातीं—आटे के पेड़े एक दूसरे से चिपक जाते और सारा काम चौपट हो जाता। मेज पर बैठे

हुये दूसरे लोग मुझे उलाहना देने लगते और आटे के लोंदे मेरे मुँह पर फेंकने लगते।

वे सब मुझसे घृणा करते और शक की नजरों से देखते थे जैसे कि मैं कोई मक्कारी या दगाबाजी करने वाला हूँ।

मेज पर अठारह व्यक्ति तंदूर में झूमते थे। तमाम आदमियों के चेहरे कुछ समान रूप-रंग लिये नजर आते थे जो बड़ा विचित्र-सा लगता था। सबके चेहरों पर थकावट और उदासीनता के भाव अंकित थे। मेरा एक साथी आटा गूँधता और आटा मिलाने की कल का लोहे का हत्था धमाके के साथ चलाता। कोई तीन मन का ढेर आटा सख्त और लोचदार गूँधना जिसमें एक भी फटकी न हो, बड़े परिश्रम का काम है। फिर यह काम होना भी बड़ी फुर्ती से चाहिए—ज्यादा से ज्यादा आधे घन्टे में।

तँदूर में लकड़ियाँ चटखती रहतीं, कढ़ाव में पानी सनसनाता रहता और मेज पर हाथों के थपथपाने की आवाजें आती रहतीं। ये सब आवाजें मिलकर निरंतर एक ही जैसी आने वाली और एक-सुरी गुनगुनाहट में परिणत हो जातीं। और यह गुनगुनाहट तब भंग होती जब कोई क्रोध में किसी को गालियाँ देता। फर्श पर बैठे काम करते हुये लड़कों में से ग्यारह वर्षीय पाश्का आत्युखोव की ताजा और बुलन्द आवाज़ सुनाई देती थी। यह चपटी नाक वाला तोतला छोटा-सा लड़का जिसके चेहरे पर कभी भय और कभी आनन्द के भाव उभर आते अपने तन्मय श्रोताओं को बड़ी ओजक व अविश्वसनीय कहानियां सुनाता कि किस प्रकार एक पादरी की पत्नी ने द्वेष से आक्रान्त हो कर अपनी लड़की पर, जिस की शादी होने वाली थी मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी। घोड़े चराने वालों को जिन संकटों का सामना करना पड़ता है और उन्हें किस प्रकार दण्ड दिया जाता है। भूत-प्रेतों, चुड़ैलों और मत्स्यांगनाओं के किस्से वगैरह। इन्हीं बातों और सुरीली आवाज के कारण लोगों ने उसका नाम 'झुन झुना' रख दिया था।

मुझे पहले ही मालूम हो चुका था कि वासिली सेम्योनोव कुछ दिन पहले—कोई चार वर्ष पूर्व, खुद उस भटियारखाने में नौकर था और अपने मालिक की बूढ़ी पत्नी के साथ रहता था। बुढ़िया को उसने यह पट्टी पढ़ाई कि वह उसे कुछ खिलाकर मार डाले। और जब उसकी मुराद पूरी हो गई तो उसने सारा काम-काज अपने हाथ में ले लिया। और अब वह उसे मारता है और उसे इतना आतंकित कर रखा है कि उसका जी चाहता है वह चूहा बन कर बिल में जा छिपे और उसकी शक्ल न देखे। यह किस्सा मुझे आम घटना की तरह सीधी-सच्चा सुनाया गया। मुझे तो शुरू से आखिर तक उस खुशनसीब आदमी में कोई चीज़ ऐसी दीखी नहीं जो मैं उससे ईर्ष्या करता।

"पतलून क्यों नहीं पहनता वह?"

उदास और भयावह चेहरे वाले कुजिन ने जो काना था मुझे बड़ी गम्भीरता से समझाया :

"नशे में धुत्त फिरता रहता है—अभी परसों ही तो उसने अपनी पियक्कड़ी का लम्बा दौर खत्म किया है।"

"दिमाग तो खराब नहीं है उसका?"

अनेकों नेत्र हास्यास्पद ढंग से मुझे घूरने लगे। बंजारा बड़ी आशावादिता से बोला :

"जरा ठहर जा बेटा, अभी पता चल जाता है कि उसका दिमाग खराब है या अच्छा।"

साठ वर्षीय कुज़िन से लेकर याश्का तक जो नानखताइयों को धागे में पिरो कर हार बनाता है और जिसे अक्तूबर से मार्च तक के लिये दो रूबल मिलते हैं, हर व्यक्ति अपने मालिक का जिक्र इस अंदाज में करता है जैसे उसे अपने मालिक पर गर्व हो और मानो कह रहा हो, अरे वासिली सेम्योनोव जैसा आदमी लाकर तो बताओ। वह बड़ा व्यभिचारी है, उसकी तीन रखेल हैं जिनमें से दो को तो वह नाकों चने चबवाता है और तीसरी खुद उसे ठोकती है। वह लालची है, हमें बुरा खाना

खिलाता है। छुट्टियों में तो हमें गोभी का शोरवा और गोश्त मिलता है, और वैसे रोज़ाना ओजड़ी मिलती है। बुध और शुक्रवार के रोज़ चर्बी से बघारा हुआ दलिया दिया जाता है। और काम के वक्त सात बोरे आटे की नानखताइयाँ उसे रोज़ दिये जाओ जब कि एक बोरे आटे में २२ मन २ सेर वज़न होता है और उसकी नानखताइयां बनाने में लगभग ढाई घंटे लगते हैं।

"बड़ी अजीब बात है, तुम अपने मालिक की इतनी बड़ाई करते हो।" मैंने कहा।

अपनी पैनी दृष्टि से मुझे घूरते हुए एक नानबाई ने कहाः

"इसमें अजीब बात क्या है?"

"ऐसा लगता है तुम सबको उस पर बड़ा गर्व है.....?"

"हां तो उसमें ऐसी खूबियाँ हैं तभी तो करते हैं गर्व। तुम्हारी समझ में यह बात आई नहीं शायद। अब देखो ना, कल तक वह एक मामूली मज़दूर था, कोई पूछता भी नहीं था उसे, और आज? पुलिस का सूबेदार भी उसे झुक कर सलाम करता है। पढ़ा-लिखा वह खाक नहीं है सिर्फ हिन्से जानता है—फिर भी देखलो चालीस आदमियों का कारोबार चलाता है, और सारा हिसाब-किताब अपनी खोपड़ी में रखे हुए है।"

कुज़्मिन ने ठंडी साँस ली और आज्ञाकारी सेवक की नाईं समर्थन में कहाः

"भगवान ने उसे बड़ी तेज बुद्धि दी है।"

और पाश्का ने उत्तेजित हो चीखकर कहाः

"नानखताई का एक तँदूर, डबल रोटी का तँदूर, बिस्कुटों का एक तँदूर भला कर तो लो इन सबका इन्तज़ाम बगैर हिसाब-किताब जाने। ढाई हज़ार मन नानखताइयाँ तो मार्दे वीनियन और तातारी देहातियों के हाथ सर्दियों में ही बेच लेता है। इनके अलावा शहर में सात फेरी वाले हैं जिनमें से हरेक को ३६ सेर नानखताइयाँ और बिस्कुट रोज़ाना बेचने

पड़ते हैं—अब बोलो, क्या बोलते हो ?"

नानबाई का यह जोश व खरोश मेरे लिये असह्य हो गया, मुझे झुँझलाहट होने लगी - मैं अपने अनुभव की बिना पर मालिकों के बारे में कुछ दूसरे ढंग से सोचने लगा था और मेरा वह विचार निराधार न था।

बूढ़े कुज़िन ने अपनी एक आँख चोरों की तरह अपनी भूरी भँवों में छिपाई और व्यंग्य से कहा:

"अरे भाई, वह कोई ऐसा-वैसा मामूली आदमी नहीं है।"

"अगर बक़ोल तुम्हारे उसने बूढ़े मालिक को ज़हर दे दिया था, तब तो वास्तव में इसमें शक ही क्या हो सकता है।....."

नानबाई ने अपनी काली भवें चढ़ाईं और कुछ संदिग्ध भाव से बोला:

"तो साब उसका कोई गवाह-ववाह तो है नहीं। बाज वक़्त ऐसा भी होता है कि घृणा या द्वेष के कारण हत्या करने या विष देने या चोरी करने का अपराध किसी के मत्थे मढ़ दिया जाता है—हमारी बिरादरी में जब किसी की तक़दीर चेत जाती है और वह फलने-फूलने लगता है तो लोगों की आँखों में खटकने लगता है।....."

"तुम्हारा भाई—बन्द कैसे हो गया भई वह ?"

बंजारे ने कोई जवाब न दिया और कुज़िन सामने वाले कोने पर नज़र दौड़ाकर लड़कों पर गुर्राया:

"अबे शैतानो ! जरा उस मूर्ति की धूल तो झाड़ दो ! तातारी, काफ़िरो।.. "

बाक़ी सब ऐसे चुप थे जैसे हैं ही नहीं।

जब थालियों में नानख़ताइयां रखने की मेरी बारी आई तो मेज के एक सिरे पर खड़े होकर मैं लड़कों को वह सब जो मैं जानता था और उनके लिये जरूरी समझता था बताने लगा। भटियारखाने में जो शोर हो रहा था उसे दबाने के लिये मुझे जोर-जोर से बोलना पड़ता था और जब वे लोग मेरी बातें ध्यान से सुनने लगते तो जोश में आकर मैं और

भी बुलन्द आवाज में बोलने लगता। इसी प्रकार का 'सुधार'-कार्य करते हुए एक बार मालिक ने मुझे ऐन मौके पर पकड़ लिया जिसके लिये मुझे सजा भी मिली और उपनाम भी।

हमारे भटियारखाने और डबल रोटी की बेकरी के दरम्यान जो मेहराबी दरवाजा है उसमें वह मेरे पीछे चुपचाप आकर खड़ा हो गया। बेकरी का फर्श हमारे भटियारखाने के फर्श से तीन सीढ़ियाँ ऊंचा था और हमारा मालिक मेहराब के चौखट में तोंद पर हाथ बाँधे खड़ा दोनों हाथों के अंगूठे एक-दूसरे के गिर्द घुमा रहा था। हमेशा की तरह वही अपना लम्बा कुर्ता जो फीते से उसकी मोटी गर्दन में बंधा हुआ था पहने हुए आटे का अचल बोरा मालूम हो रहा था।

इस ऊँची जगह पर खड़ा वह अपनी बेजोड़ आँखों से सबका मुआयना कर रहा था। उसकी मँजरी आँख की पुतली बिल्कुल गोल थी, बिल्ली की पुतलियों की तरह कभी चमकने लगती, कभी सिकुड़ जाती। और दूसरी भूरे रंग की बैज़वी आंख मुर्दे की आंख की तरह पथराई हुई और चिकनी-चिकनी मालूम हो रही थी।

मै भी बोलता ही गया, यहाँ तक कि महसूस हुआ कि भटियारखाने में असाधारण निस्तब्धता छागई है। पर काम पहले से अधिक फुर्ती से होने लगा था। मेरी पीठ के पीछे से किसी की उपहासपूर्ण आवाज आई:

"क्या बकबक लगा रखी है बे बड़बड़िये ?"

मैंने जो पीछे मुड़कर देखा तो मैं घबड़ा गया और मेरी घिग्घी बँध गई। अपनी मंजरी आँख से मुझे एड़ी से चोटी तक घूरते हुए वह मेरे पास से गुजरा और जाकर नानबाई से पूछा:

"कैसा काम करता है यह ?"

पाशा ने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा:

"बिल्कुल ठीक है! बड़ा बल-कस वाला है....."

हमारा मालिक बड़े इत्मिनान से भटियारखाने में टहलता रहा

और दरवाजे की सीढ़ियों पर चढ़कर उसने नर्म और थके स्वर में बंजारे कहा:

"हफ्ते भर इसे आटा गूँधने पर लगाए रखो जरा....."

यह कहकर वह दरवाजे में से अदृश्य हो गया और साथ ही कुहरे का एक सफेद बादल भटियारखाने में घुस आया।

दुर्बल लँगड़े वानुक उलानोव ने जिसके चेहरे से ढिठाई टपकती थी बड़े ही भोंडे हाव-भाव और बेढंगी बोली में कहा, "मैं तो सारी उमर भी न करूँ !"

किसी ने सीटी बजाकर उसका उपहास किया। नानबाई ने चारों ओर प्रकोपपूर्ण दृष्टि दौड़ाई और ये बड़ी गाली देते हुए कहा :

"चलो वे काम करते नजर आओ !"

कोने में से जहाँ फर्श पर बैठे लड़के काम कर रहे थे तोतले याश्का की क्रोधित और झिड़की भरी आवाज आई :

"अरे बड़े कमाल के लोग हो तुम। मजे में बैठे हो तुम मेज पर। जब तुमने मालिक को आते देखा था तो उथ बेचारे को इथारा करते क्या तुम्हारी नानी मरता थी?

"हाँ और क्या ! उसके भाई सोलह वर्षीय आर्तेम की आवाज आई। वह ऐसा हवन्नक दिखाई दे रहा था जैसे लड़ाई के बाद कोई मुर्गा। एक हफ्ते लगातार आटा गूँधना हंसी-ठट्ठा नहीं है—हालत पतली हो जायेगी बेचारे की।"

मेज के परले सिरे पर बूढ़ा कुजिन और भूतपूर्व सैनिक मिलोव बैठे थे। मिलोव बड़ा खुशमिजाज आदमी था पर बेचारा आतशक का मरीज था। कुजिन ने अपनी निगाहें नीची करलीं पर कहा कुछ नहीं। बूढ़ा सैनिक, अपराधी की नाईं भुनभुनाया:

"और, मुझे तो इसका ध्यान ही नहीं आया ....."

नानबाई ने दाँत निकालकर हँसते हुए कहा:

"अब तेरा नाम बड़बड़िया हो गया।"

दो-तीन आदमियों ने अनमने से कह कहा लगाया और उसके बाद एक भद्दा, कष्टकर सन्नाटा छा गया। सब लोग मुझसे नजरें चुराने लगे।

सन्य की गहराई में तो सबसे पहले योश्का ही पहुँचता है. सहसा ओसिप शातुनोव को दबंग आवाज आई। वह एक भद्दे, चपटे चेहरे और तिरछी छोटी-छोटी आँखो वाला एक बेडौल-सा आदमी था। "यह याश्का दुनिया में ज्यादा नहीं जियेगा।"

"तुम जाओ जहन्मुन में। लड़के की बारीक और तेज आवाज गूँजी।

"इसकी तो जबान काट ली जानी चाहिये," कुंजन ने सलाह दी। आर्तेम ने झल्लाकर जवाब दिया : "अबे तेरी ही जीभ न कट जाय जड़ समेत। नीच कहीं के।"

"चुप हो जाओ बे!" तँदूर के पास से एक रोबदार आवाज आई।

आर्तेम उठा और मरियल चाल से बरामदे के दरवाज़े की ओर जाने लगा। पीछे से उसके छोटे भाई की डाँट सुनाई दी :

"नंगे पैर कहाँ चले। जूते पहन कर जाओ—कहीं सर्दी लग गई तो लेने के देने पड़ जायेंगे।"

जाहिर है हर शख्स इस प्रकार की उक्तियों का आदी था—और वे सब खामोशी से उन्हें टाल दिया करते थे। आर्तेम ने स्नेहपूर्ण और मुस्कान भरी दृष्टि से अपने भाई का ओर देखा और उसे आँख मारकर अपने फटे-पुराने बूट पहन लिये।

मुझे बड़ा रंज हुआ। उन लोगों में अपनी तनहाई और अजनबियत के एहसास से मेरा दिल डूबने लगा। बर्फानी तूफान गंदी खिड़कियों को पीट रहा था—बाहर बड़ा सर्दी थी। इस किस्म के लोगों को मैंने देखा था और उनके स्वभाव को भी मैं कुछ-कुछ समझने लगा था।

मैं जानता था कि उनमें से लगभग प्रत्येक की आत्मा दुःख और अटल संकटापन्न स्थिति से गुज़र रही थी— वह आत्मा जो गाँव के निस्तब्ध वातावरण में पैदा हुई और परवान चढ़ी थी, और जिनके

कोमल व लचकदार जौहर को सैंकड़ों हथौड़ियों से पीट-पीट कर शहर अपनी तर्ज़ में ढाल रहा था--कुछ को विस्तृत कर रहा था और बाकियों को संकुचित।

नगर की क्रूर और निर्मम कारस्तानी विशेषतया उस समय अधिक स्पष्ट दीखने लगती थी जबकि ये सादगी पसंद लोग देहाती गीत गाने लगते और उन गीतों व संगीत में अपनी आत्माओं की दर्दनाक हैरानी और मूक वेदना समो देते थे।

दुख की मारी ग़रीब एक गोरी

अचानक उलानोव ने ऊँची और लगभग स्त्री की-सी आवाज़ में गाना शुरू किया। फिर कोई और अनायास ही गाने में शामिल हो गया :

रात को खेत में चली आई·····

चूंकि शब्द 'खेत' कुछ मंद सुर में गाया गया था इसलिये दो-तीन और गाने में शामिल होगये। अपने सिरों को और भी नीचे झुकाकर, अपने चेहरे छिपाते हुये वे अपने स्मृति-सागर में डूबने- उतारने लगते :

खेत में छिटकी हुई थी चाँदनी
और हवायें गारही थीं रागनी·····

अभी गीत की अंतिम पंक्ति नहीं गाई गई थी कि वानुक ने सिसकी भरे स्वर में उन्हें शुरू से दुहराना शुरू कर दिया :

दुख की मारी गरीब एक गोरी·····

गीत और भी अधिक सबल और बुलंद हो गया :

सर्द झोंकों से कहा गोरी ने यह
ऐ सहेली, ऐ मेरी प्यारी हवा
मेरे दिल की धड़कनों को रोकदे
मुझ से मेरी आत्मा को छीनले

और जब वे यह गीत गारहे होते तो ऐसा लगता कि खेतों से

चलकर शीतल व मंद वायु का झोंका भटियारखाने में घुस आया है। और सुखद विचार मस्तिष्क पर छाए जाते हैं—वे विचार जो मनुष्य को उन्नत व उसके हृदय को दयालु बनाते हैं। फिर सहसा जैसे कोमल शब्दों की उदासी पर लज्जित हो कोई बुदबुदाता :

"आहा, वह तो बेचारी थक गई······"

उलानोव और भी ऊँचे और उदास सुर में गाया, उसकी गर्दन की नसें उभड़ आई और चेहरा सुर्ख अंगारा हो गया :

दुख की मारी गरीब एक गोरी

आत्मा को झकझोरने वाली आवाज़ें उठती और गीत उदासी के अथाह सागर में डूब जाता :

उसने रोकर सर्द झोंकों से कहा
ऐ सहेली ऐ मेरी प्यारी हवा
तू मेरा मायूस दिल ले जा वहाँ
दूर जंगल में अँधेरा हो जहाँ

"और मैं शर्त लगाता हूँ कि वह—"गाने के दौरान में ही नवसी ने एक अश्लील और गंदा व्यंग्य कस दिया। अंधियारे तहखाने और गंदे आँगन की दुर्गंध खेतों की सुगंधित वायु को दूषित कर देती है।"

"अरे लानत है इस सब पर!" किसी ने ठण्डी सांस भर कर कहा।

वानुक और मधुरतम वाणी वाले अन्य गायक ज़ोर की तान लगाते मानो वे विषाक्त नीली लपटों और दुर्गंधमय शब्दों को ठण्डा करना चाहते हों, किन्तु अन्य लोग प्रेम की दुखद गाथा पर और अधिक लज्जित होने लगते—वे जानते थे कि शहर में प्रेम दस कोपेक में खरीदा जा सकता है; वे उसे भी खरीदते हैं और उसके साथ ही शारीरिक रोग और भयानक कलंक भी—और उसके सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण दृढ़ हो चुका था।

दुख की मारी गरीब एक गोरी
प्रेम करता नहीं है मुझसे कोई······

"अरे इतनी शालिन न बनो—नहीं तो एक-दो नहीं दस पड़ जायेंगे पीछे ·· "

"उन्हें, उन चंचल छोकरियों को तो बस यह आता है कि विवाह करलें और हम पुरुषों की गर्दनों पर सवार हो जायें। ··· "

"यह भी बिलकुल सच है। ·····"

उलानोव आँखें मींच कर खूब गाता और उस समय उसके दुराचारी, वृद्ध चेहरे पर बड़ी सुन्दर झुर्रियाँ पड़ जातीं और वह एक शर्मीली मुस्कान से दमकने लगता।

लेकिन अक्सर बेसुरे लोग गीत को इस प्रकार बिगाड़ देते हैं जिस प्रकार स्वच्छ वस्त्रों को कीचड़ की छींटें। और वानुक को अपने तईं यह मानना पड़ता है कि उसकी वह दर्दभरी आवाज़ अब खत्म हो चुकी है। अब वह अपनी चुंधी आँखें खोलता और उसका मुर्झाया हुआ चेहरा धृष्टतापूर्ण मुस्कान से विकृत हो जाता और उसके पतले होंठों पर कुछ अपशब्द रेंगने लगते। एक श्रेष्ठ गायक की हैसियत से वह अपनी कीर्ति कायम रखने का इच्छुक था। और उस जैसे आलसी और अपने साथियों में अप्रिय व्यक्ति का वह यश ही तो था जिसके कारण वह भटियारखाने में अब तक टिका हुआ था।

अपने पतले और लाल बालों वाले सिर को झटका देकर वह बड़ी बारीक आवाज में चीखता :

क्या मज़ा आया हमें प्रज़ोम्नी बाज़ार में
एक विद्यार्थी नशे में धुत्त था लेटा वहाँ ·····

दुर्भावना भरे आनन्द में मग्न यह अशिष्ट गीत गाते हुए सबके सब झूमने, हू-हू करने और सीटियाँ बजाने लगते और सारा भटियारखाना एक आवाज़ में चीख उठता :

लेटकर वह छल-कपट से मुस्कराता था वहाँ ·····

ऐसा प्रतीत होता था मानो सूअरों का एक समूह किसी सुन्दर वाटिका में घुस कर फूलों को रौंद रहा हो। उलानोव घिनौना और नीच था।

उत्तेजना से वह उन्मत्त हो गया, उसके उर में ज्वाला भड़क उठी, उसके चेहरे पर चकत्ते पड़ गए थे उसकी आँखों की पुतलियाँ उबली पड़ रही थीं, अपने शरीर को बड़े निर्लज और अश्लील ढंग से बल दे कर वह बड़ी शर्मनाक हरकतें कर रहा था और उसकी कर्कश आवाज अचानक और भी सख्त हो जाती थी और विषय-वासनाएँ हृदय को बरमाने लगती थीं ।

आओ सुन्दरियो, आओ आओ नारियो ।

वह हाथों को लहरा कर गाता और बाकी सब भी उस उत्तेजक कोलाहल में शामिल हो जाते ।

जल्दी आओ...हैया हो ।
आओ आओ.....।
आओ आओ.....।

गाढ़ी, चिकनी, चिपचपी कीचड़ उबल रही थी और उसमें कराहती हुई सिसकियाँ, भरती हुई मानवीय आत्माओं को पकाया जा रहा रहा था । वह पागलपन असह्य हो गया था, उसका दृश्य-मात्र ही ऐसी उन्मत्तता उत्पन्न करता था कि जी चाहता दीवार से सिर फोड़ लें । लेकिन इसके बजाय होता यह कि आप अपनी आँखें बन्द कर लेते और खुद भी वह अश्लील गीत गाने लगते—शायद दूसरों से भी ज्यादा जोर से । अपने साथियों पर आपको तरस आने लगता और यह विनाशकारी भावना आपको परास्त कर देती । इसके अतिरिक्त किसी को अपनी श्रेष्ठता अनुभव करने का अवसर बार-बार तो हाथ आता नहीं है ।

कभी-कभी हमारा मालिक दबे पाँव आ धमकता या लाल घुंघराले बालों वाला क्लर्क साश्का दौड़ा-दौड़ा आ जाता ।

"मजे मार रहे हो ना पट्ठों ?" सेम्योनोव विषैली किन्तु मीठी आवाज में पूछता पर साश्का तो यों ही चीख पड़ता:

"अबे इतना हो-हल्ला नहीं, हरामियों।"

और भड़कते हुए शोले फौरन ठण्डे पड़ जाते। ये लोग जिस खुशी और उत्साह से यह नादिरशाही हुक्म मान लेते थे उससे तो आत्मा पर और भी अधिक गहरा और बोझिल अन्धकार छा जाता था।

एक दिन मैंने पूछा:

"भाइयो! तुम लोग अच्छे-अच्छे गीतों की मिट्टी पलीद क्यों करते हो?"

उलानोव ने चकित दृष्टि से मेरी ओर देखा।

"क्यों, क्या हम लोग खराब गाते हैं?"

और ओसिप शातुनोव ने अपनी भारी आवाज़ में, जो बहुधा निरुत्साह-सी लगती थी, कहा—

"गीत को तो हम चाहें तो भी नहीं बिगाड़ सकते। वह तो आत्मा की भाँति होता है जो अमर होती है। हम सबका भौतिक शरीर समाप्त हो जायगा परन्तु गीत सदैव जीवित रहेगा.....वह सदैव अजर-अमर रहेगा।"

जब ओसिप बोलता था तो मठ के लिये चण्दान एकत्र करने वाली भिक्षुणी की नाईं नजरें नीची कर लेता था। और जब वह खामोश होता था तो उसके चौड़े चपटे मुँह की कपोल-पलकें निरन्तर हिलती रहती थीं मानो यह भीमकाय व्यक्ति कोई चीज हमेशा चबाता ही रहता हो।

लकड़ी की खपच्चों को जोड़-जाड़ कर मैंने एक बुक-स्टैंड सा बना लिया था और जब मैं आटा गूध चुकने के बाद नानखताइयाँ चुनने के लिए अपनी मेज पर आता तो उस स्टैंड पर मैं अपनी किताब खोलकर रख लेता था और जोर-जोर से पढ़कर सबको सुनाता था। मेरे दोनों हाथ तो बराबर काम में लगे रहते थे इसलिए पन्ने उलटने का काम मिलोव के सुपुर्द था—वह इस काम को बड़ी श्रद्धा से करता, हर बार

बनावटी अन्दाज में जोर लगाता और उँगलियों में काफी थूक लगा कर पन्ना उलटता। यह काम भी उसी के सुपुर्द था कि यदि मालिक सहसा आन धमके तो वह मेज़ के नीचे लात चलाकर मुझे इशारा करदे।

लेकिन भूतपूर्व सैनिक कुछ खोया-खोया-सा रहता था। और एक दिन जब मैं टाल्स्टाय की "तीन भाइयों की कहानी" पढ़ रहा था तो मुझे अपने कन्धे के ऊपर से सेम्योनोव की घोड़े की-सी हिनहिनाहट सुनाई दी। उसका छोटा-सा गोल-मटोल हाथ अचानक बाहर निकला और उसने किताब झपट ली और पूर्व इसके कि मैं सम्हलूँ मैंने देखा वह किताब हाथ में झुलाता हुआ तँदूर की ओर जा रहा है और कह रहा है:

"वाह! यह बात मुझे बहुत पसन्द है क्यों? बड़ा चालाक है..."

मैंने लपककर उसे पकड़ा और बाजू दबोच कर कहा:

"किताब नहीं जला सकते तुम!"

"कौन कहता है?"

"नहीं जला सकते! मैंने कह दिया।"

भटियारखाने में सन्नाटा छा गया। मुझे नानबाई की चढ़ी हुई त्योरियाँ और मुस्कराते हुए दाँत नजर आये और मुझे लगा वह गरजने ही वाला है:

"टूट पड़ो इस पर!"

मेरी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया। हरे-हरे चक्कर नजरों में घूमने लगे और मेरी टाँगें लरजने लगीं। सब लोग तन-मन से काम में लगे हुए थे मानो उन्हें जल्दी हो कि एक काम खत्म करके फौरन दूसरा शुरू कर देना है।

"नहीं जला सकता?" मालिक ने मेरी ओर देखे बिना ही शांति-पूर्ण स्वर में दुहराया। उसका सर एक ओर झुका हुआ था मानो कुछ सुनने का प्रयत्न कर रहा हो।

'लाओ, इधर लाओ ।"

"अच्छा.....लेलो ।"

मैंने मसली-मसलाई किताब लेली और मालिक का बाजू छोड़ कर वापस अपनी जगह पर आ बैठा । वह भी सर झुकाये हमेशा की तरह चुपचाप बाहर आँगन में चला गया । भटियारखाने में बड़ी देर तक निस्तब्धता छाई रही । फिर नानबाई ने बड़े भद्दे अन्दाज़ से अपने चेहरे का पसीना पोंछा और जमीन पर पाँव फटकारते हुए बोला:

"आयहाय, कम्बख्तों ! क्या दिन दिखाये है ! मुझे तो पूरा यकीन था कि वह तुम सब पर टूट पड़ेगा ।"

"और मुझे भी ।" मिलोव ने खुशी-खुशी हाँ मे हाँ मिलाई ।

"अरे साहब लड़ाई होते-होते रह गई ।" बंजारे ने खेद-पूर्ण स्वर में कहा ।

"अच्छा तो बड़बड़िये ! अब जरा चौकन्ना रहना । अबके तो छोड़ दिया उसने पर आइन्दा बदला लेलेगा ।"

कुजिन ने अपना सिर हिला कर बड़बड़ाते हुए कहा:

"यह जगह तेरे लिए ठीक नहीं, समझा भाई ! हम झगड़ा-टण्टा नहीं चाहते । मालिक को गुस्सा तू दिलायेगा भुगतना पड़ेगा हम सबको ।"

याश्का आर्त्युखोव ने सैनिक को दबी आवाज मे गालियाँ देते हुए कहा:

"क्या उसे आते हुए नहीं देखा था तूने, क्यों बे बौड़म ?"

'हाँ ऐसा ही लगता है ।"

"तो त्या तुझसे तहा नहीं था ति दरा देथता रहना ।"

"हाँ पर चूक गया इस बार क्या करें.....।"

भटियारखाने के अधिकतर मजदूर उदासीन थे और चुप साधे हुए थे । और बैठे हुए बाकी लोगों का गुर्राना सुन रहे थे । मैं भाँप ही न

सका कि वे मेरे बारे में क्या सोच रहे हैं । मैं कुछ उद्विग्न-सा था ही चुनांचे मैंने फ़ैसला किया कि यहाँ से चला जाना ही बेहतर है । ऐसा लगा जैसे बंजारे ने मेरे इरादे का अनुमान लगा लिया हो क्योंकि वह क्रोधित हो बोला:

"देख बे बड़बड़िये ! ऐसा कर अपना हिसाब साफ करले । वरना देखना नाक में दम हो जायगा तेरा । येगोर को तेरे पीछे लगा देगा वह और बस समझ कि हुआ काम तमाम ।"

उसी वक्त याश्का फर्श पर से उठ खड़ा हुआ जहाँ अभी तक वह दर्ज़ियों की तरह आलती-पालती मारे चटाई पर बैठा था । उठ कर जब वह खड़ा हुआ तो कमानदार, बल खाई हुई टाँगों के ऊपर उसका पेट बाहर को निकल पड़ा । उसकी दूधिया नीली आँखों में भयानक चमक पैदा हो गई और वह मुक्का तान कर बोला :

"त्या ? ताम छोड़ कर चला दाये ? अरे मार मुत्ता इसते जबड़े पर ! अगर यह तुमसे लड़ेदा तो मैं तुम्हारा साथ दूँदा ।"

क्षण भर के लिए तो सन्नाटा छाया रहा और फिर सहसा क़हक़हों का बादल फट पड़ा—ताज़गी भरे और सबल कहकहे जो गर्मियों में बारिश के ज़ोरदार छींटे की तरह मनुष्य की आत्मा के सारे विकार और मुर्झाहट धोकर उसे पवित्र और निर्मल कर देता है । इन्सानों को एक ठोस चट्टान बना कर एकजान कर देता है और जो परस्पर मैत्री और सहानुभूति के सम्बन्धों से और भी दृढ़ हो जाता है ।

तमाम आदमियों ने अपना काम छोड़ दिया और हँसी के मारे पेट पकड़े-पकड़े फिरने लगे, आँखें लोट-पोट हो गईं और आँसू उन के गालों पर बहने लगे । याश्का भी कुछ भौचक्का हो हँस रहा था और अपनी कमीज़ झटक रहा था ।

"त्यों नहीं ? मैं चथाऊँदा उसे मजा ! ढेया या तोई लतड़ी डन्डा उठातर दे मारूँदा·····"

सबसे पहले शातुनोव की हँसी रुकी। हथेली से मुँह पोंछते हुए और किसी की ओर देखे बिना उसने कहा:

"अबके भी याश्का ही ने हिम्मत की, लौण्डा ठीक कहता है! बेकार बेचारे को डरा रहे हो। वह तो तुम्हारे भले की बात करता है और तुम उसे निकाल बाहर करने पर तुले हुए हो ...।"

"अरे पर सावधान कर देने में तो कोई हर्ज नहीं है!" याश्का अपनी हँसी पर काबू पाने के बाद बोला। "हम कुत्ते तो हैं नहीं, क्यों हैं ना?"

और सब-के-सब बड़ी दिलचस्पी ले लेकर यह उपाय ढूँढने लगे कि मुझे येगोर के पंजे से किस तरह बचाया जाए।

"किसी को मार डाले या अपाहज कर दे—उसके लिए सब समान हैं। फर्क ही क्या पड़ता है, कुछ भी नहीं।"

बचाव के और हमले के निरर्थक और मूर्खतापूर्ण मन्सूबे बनाने में याश्का सबसे बाज़ी ले गया। उधर बूढा कुज़िन एक कोने में आँखें गाड़ कर गुर्राया:

"क्यों रे तुम लोगों को कितनी बार कहना पड़ेगा कि मूर्ति झाड़-पोंछ कर साफ कर दो...?"

बंजारा अपना बेलचा अँगीठी में चला रहा था और जैसे अपने आप ही से तर्क-वितर्क कर रहा था:

"मुसीबत के लिए हरेक को तैयार रहना चाहिए...यहाँ तो अब दिन-रात झगड़ा-टण्टा होने लगा है—।"

आँगन में कोई भारी कदमों से चलता हुआ आया और खिड़की के पास से गुज़र गया और बूझ-बुझक्कड़ याश्का ने ज़ोरदार लहजे में कहा:

"येगोर है सुअरों को एक नजर देख कर आया होगा अब फाटक बन्द करने गया है...।"

कोई बुदबुदाया:

"हाय ! अस्पताल में ही किसी ने उसका काम तमाम न कर दिया...।"

फिर नीरवता और उदासी छा गई । एक मिनट बाद नानबाई न फिर सुझाया:

"सेम्योनोव को परेड करते देखना चाहते हो ?"

बरामदे में खड़ा मैं दीवार की दरार में से झाँक कर बाहर आँगन में देख रहा था। आँगन के बाच में हमारा मालिक एक खाली बक्स पर बैठा था। उसकी टाँगें नंगी थीं कुर्ते के दामन में कोई दो-तीन दर्जन पाव रोटियाँ थीं। चार बड़े-बड़े नसली सुअर उसके घुटनों से अपनी थूथनियाँ रगड़-रगड़ कर ज़ोर-ज़ोर से खरखरा रहे थे और वह उनके लाल जबड़ों में पाव रोटियाँ ठूंसता जाता और सुअरों के पेट थपथपा-थपथपा कर बड़ी नर्म, धीमी और अनजानी आवाज़ में बड़-बड़ा रहा था।

"हूँ हूँ, खाओगे ? पाव रोटी खाओगे ? लो, लो खाओ...।"

उसका भरा हुआ चेहरा, हल्की, स्वप्निल मुस्कान से खिला हुआ था । उसकी फुल्ली आँख में जान पड़ गई थी और वह गहरा लगाव प्रकट कर रही थी। कहना चाहिए कि उसके इर्द-गिर्द की हरेक चीज में कुछ विलक्षण अजनबियत पैदा हो गई थी। उसकी पुश्त पर एक चौड़ा-चकला, चेचक मुँह दाग, मूछैल सफाचट नीली टोढ़ी वाला कोई व्यक्ति खड़ा था जिसके बायें कान में चाँदी की बाली पड़ी थी। सिर पर टोपी गद्दी की तरफ तिरछी किए उसन बटन जैसी गोल-गोल धुँधली आँखों से सुअरों की ओर देखा जो उसके मालिक के साथ खेल रहे थे । उसके दोनों हाथ जेबों में ठुँसे अन्दर–ही–अन्दर बल खा रहे थे।

"अब समय आ गया है इन्हें बचने का, " उसने कर्कश ध्वनि से

कहा। उसके उस चेहरे पर कोई शिकन तक नहीं पड़ी ।

"बड़ा वक्त पड़ा है," मालिक ने तड़ख कर जबाब दिया। "ऐसे जानवर फिर कब मिलेंगे—?"

एक सुअर ने उसकी पसलियों में अपनी थूथनी रगड़नी शुरू कर दी । सेम्योनोव सन्दूक पर बैठे–ही–बैठे झूम गया और अपना बेडौल शरीर फुदकाते हुए उसने इस प्रकार दाँत निकाले कि चेहरे की मोटी-मोटी शिकनों में उसकी बेजोड़ आँखें गायब हो गईं।

"रोगी-पोगी साधु !" उसने ठहाका मार कर चिंघाड़ते हुए कहा। "अँधेरे में रहते हैं बेचारे अँधेरे में ! हाय हाय, देखो तो चू चू ! ओहो, देखो तो ! अरे मेरे नन्हें-मुन्ने साधु, सीधे सादे..."

सुअर सब–के–सब उक्ता देने की हद तक समान थे। और मालूम होता था जैसे एक ही पशु सारे आँगन में दौड़ता फिर रहा हो। हास्यास्पद और भद्दी समानता, छोटे-छोटे उनके सिर, उनकी छोटी-छोटी टाँगें और उनकी नंगी-नंगी तोंदें जमीन से लगती हुई और वे अपनी बेकार छोटी-छोटी आँखों की सफेद पलकों को जोर-जोर से झपकाकर उस आदमी से टकराते फिर रहे थे। और मैं खड़ा उनको यों देख रहा था जैसे कोई भयानक सपना देख रहा हूँ ।

गुर्राते, हिनहिनाते और दाँत कटकटाते ये सुअर अपनी ललचाती थूथनियाँ मालिक के घुटनों में ठूँस रहे थे। उसकी टाँगों और पसलियों से रगड़ रहे थे। और वह खुद भीं चिंघाड़ें मार रहा था । एक हाथ से उनको धक्का देकर भगा देता और दूसरे से, जिसमें वह रोटी के टुकड़े लिए हुए था, उनको सताता जाता । कभी तो रोटी वाला हाथ उनके एकदम समीप ले जाता और फिर एकदम हटा लेता । दबादबा कहकहा उसके पूरे जिस्म को थलथल हिला देता । इस हाल में खुद भी वह सुअरों जैसा मालूम होरहा था। फर्क अगर कुछ था तो सिर्फ यह कि वह उनसे भी अधिक डरावना घृणित, और विलक्षण था।

आहिस्ता-आहिस्ता अपने सिर को ऊपर उठाकर येगोर बड़ी देर तक आकाश को तकता रहा जो इतना ही धुँधला और सर्द था। जितनी खुद उसकी आँखें—चमकती हुई बालियाँ उसके कन्धों पर थिरक रही थीं ।

कुछ अस्वाभाविक ऊँची आवाज में उसने कहा, "अस्पताल में उसने मुझे राज़दराना तौर पर बताया था कि क़यामत कभी आयेगी ही नहीं ।"

सेम्योनोव ने जो एक सुअर के कान पकड़ने की कोशिश कर रहा था पूछा:

"अच्छा नहीं आयेगी ?"

"नहीं ।"

"शायद वह झूठी, मक्कार है ।"

"हाँ होगी ।"

मालिक उन चुलबुले, साफ और चिकने शरीर वाले सुअरों से खेलता रहा । लेकिन अब उसके हाथों की हरकत में सुस्ती पैदा हो गई थी । मालूम होता था कि वह थक गया है ।

"उसका वक्ष बड़ा सुन्दर है और नयन मद भरे ।" येगोर ने बीते दिन याद करके ठण्ढी साँस भरते हुए कहा ।

"कौन, नर्स ?"

"और नहीं तो क्या ! क़यामत तो वह कहती थी कभी आयेगी ही नहीं पर अगस्त मे सूर्य-ग्रहण पूरा हो जायगा ।....."

सेम्योनोव ने फिर उसी अविश्वास से पूछा—

"बिल्कुल पूरा ? सच बताना ।"

"हाँ हाँ, पूरा । लेकिन वह कहती है कि ज्यादा देर तक नहीं रहेगा । बस एक परछाईं आयेगी और चली जायगी ।"

"परछांई कहाँ से आती है ?"

"मुझे क्या मालूम शायद भगवान के पास से।....."

मालिक उठ खड़ा हुआ और कठोर व कर्कश स्वर में बोला:

"मूर्खा है वह । सूर्य के सामने कोई परछाईं नहीं टिक सकती। उसकी किरणें उसे भी चीर कर निकल जायेंगी। यह तो हुई एक बात। दूसरी यह कि लोग कहते हैं भगवान स्वयं जाज्वल्यमान है। तो फिर भला उसकी छाया कहाँ से आई ? फिर आकाश में शून्य के सिवाय कुछ भी नहीं है। कभी तुमने ऐसी चीज की परछाईं देखी है जो कुछ भी न हो ? वह निरी बुद्धू है बिल्कुल बेवकूफ।....."

"बेशक,बेशक। हर औरत की तरह।..."

"यही तो बात है...अच्छा तो इन बच्चों को सुअरखाने में बन्द कर दो।"

"मैं किसी लड़के को बुलाता हूँ।"

"अच्छा बुलालो ! लेकिन हाँ देखो वे उन्हें मारें नहीं। और अगर उन्होंने मारा तो मुझे बताना। मैं उनकी खबर लूँगा।"

"मुझे मालूम है।"

मालिक आँगन में से गुजरता हुआ चला गया और सुअर उसके पीछे-पीछे दौड़े जैसे सुअरनी के पीछे दौड़ते हैं।

दूसरे दिन सुबह सबेरे मालिक ने बरामदे की ओर से हमारे भटियारखाने का दरवाजा धक्का देकर खोला और चौखट के सहारे खड़ा होकर विषैली मधुरता से कहा:

"मि० बड़बड़िये, जरा जाओ तो आँगन में से आटे के बोरे लाकर बरामदे में तो रख दो।"

खुले हुए दरवाजे में से सर्द हवा के सफेद बादल अन्दर घुस आये और उबालने वाले निकिता के गिर्द छा गए। उसने मुड़कर मालिक को देखा और निवेदन किया:

'जरा दरवाजा बन्द कर दीजिए वासिली सेम्योनोविच ! बड़ी तेज आँधी चल रही है।"

"क्या ? आँधी ?" सेम्योनोव गुर्राया और अपनी छोटी-सी मुट्ठी से उसकी टाट पर ठोंग मार कर दरवाजा योंही खुला छोड़ चला गया। निकिता की आयु कोई तीस वर्ष की थी लेकिन देखने में वह लड़का ही मालूम होता था—बुजदिल—सा नाटे कद का आदमी जिसके पीले चेहरे पर बेरंग बालों के गुच्छे-से थे। बड़ी बड़ी-आँखें जो हमेशा खुली रहती थीं और कसक व वेदना तथा भय के कारण पथराई हुई सी नजर आती थीं। विगत छः वर्षों से दिनचर्या यह थी कि सुबह ५ बजे से रात के ८ बजे तक वह उबलते हुए पानी के कढ़ाव के सामने खड़ा होकर उसमें निरंतर हाथ डुबोता रहता था। सामने से तो दहकती हुई आग के शोले उसका जिस्म झुलसाते रहते थे और पीछे से दिन में सैकड़ों बार दरवाजा खुलता और ठण्डी हवा के झोंके आकर उसकी पीठ सुन्न कर देते। गठिया की बीमारी के कारण उसकी उँगलियाँ ऐंठ गई थीं; फेफड़ों पर सूजन आ गई थी और टाँगों में नीली-नीली नसों की गाँठें उभर आई थीं।

एक खाली बोरा पीठ पर सँभालकर मैं बाहर आँगन में चला गया। ज्योंही मैं निकिता के पास आया उसने दाँत पीसते हुए बड़बड़ा कर कहा:

"सब तेरा कसूर है, ग़ारत हो जाए तू...।"

गदले पसीने की तरह आँसू उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से बहने लगे।

मैं निढाल हो बाहर आया और सोचने लगा:

"मुझे यहाँ से जाना ही पड़ेगा।"

एक जनाना समूर का कोट पहने मालिक आटे के बोरे के ढेर के पास खड़ा था—कोई डेढ़ सौ बोरे होंगे और उनके एक तिहाई भी बरामदे में नहीं आ सकते थे। यही मैंने मालिक से भी कहा और उसने मुँह बना कर जबाब दिया:

"अगर नहीं आये तो मैं तुम्हीं से उन्हें फिर बाहर निकलवाऊँगा। तुम काफी बलशाली हो...।"

मैंने कंधे पर से बोरा घसीट कर फेंक दिया और सेम्योनोव से कह दिया कि मैं इस बकवास को बर्दाश्त नहीं कर सकता। मेरा हिसाब साफ कर दो।

"चलो चलो, काम करो।" उसने व्यंग्य किया, "सर्दी का मौसम है कहाँ जाओगे? भूखों मर जाओगे।"

"मेरा तो तुम हिसाब साफ कर दो।"

उसकी फुल्ली आँख सुर्ख अंगारा हो गई और मँजरी आँख की पुतली दुष्टता से घूमने लगी। मुक्का तान कर और सिसकियाँ लेते हुए उसने कहा:

'घूसा खाना चाहते हो?"

मारे गुस्से से मेरे तनबदन में आग लग गई। उसके तने हुए हाथ पर मैंने हाथ मार कर गिरा दिया और उसका कान पकड़ कर चुपचाप मसलना और खींचना शुरू कर दिया। इतने ही में उसका बायाँ हाथ मेरे सीने पर पहुँच गया और उसने बौखलाई हुई और दबी-दबी आवाज में चीखना शुरू कर दिया।

"ठहरो, ठहरो! क्या कर रहे हो? तुम्हारा मालिक हूँ। छोड़ो भी कमबख्त...।"

फिर बारी-बारी अपने चोट खाये हुए दाहिने हाथ को बायें हाथ

से दबाते हुए अपने सुर्ख कान को हिलाते हुए उसने मुझे अपने लाल-लाल दीदे निकाल कर घूरा और बड़बड़ा कर कहने लगा:

"अपने आक़ा के साथ यह हरकत ? क्यों बे ! अबे तू है कौन ? अरे मै...मैं पुलिस को बुलाऊँगा ! मैं अभी..."

और अचानक अपने होंठों को भींचते हुए जैसे कि उसे बड़ी तकलीफ हो रही हो उसने लम्बी-सी दर्द भरी सीटी बजाई और अपनी दाहिनी आंख को झपकाते हुए मुड़ गया ।

मेरा गुस्सा मुट्ठी भर सूखी घास की तरह भड़क कर एकदम ठण्डा हो गया । धीरे-धीरे एक कोने की तरफ भारी कदमों से जाते हुए उसने बहुत ही भद्दी-सी आकृति बनाई । छोटे-से समूर के कोट में से झाँकते हुए उसके मोटे-मोटे पुट्ठे चोट खाए हुए-से थिरक रहे थे ।

मैं ठण्ड में बिल्कुल अकड़ गया था और चूँकि वापस भटियारखाने मे जाने की इच्छा नहीं थी इसलिए बोरों को ढोकर बरामदे में ले जा कर अपने आपको गर्म करने का फ़ैसला किया । जब मै पहला बोरा लेकर दौड़ता हुआ अन्दर गया तो शातुनोव नजर पड़ा । वह जमीन मे ऊँकड़ू बैठा दीवार की दरार मे से झाँक रहा था और देखने में बिल्कुल उल्लू मालूम हो रहा था । उसके सफ़ेद बाल दरख्त की छाल की एक लम्बी-सी पट्टी से बंधे हुए थे जिसके दोनों सिरे उसकी पेशानी पर पड़े भवों के साथ-साथ हिल रहे थे ।

"मैंने देख लिया है," उसने सन्तोष से कहा । लालटैन जैसे उसके कल्ले जोर-ज़ोर से हरकत कर रहे थ ।

"अच्छा तो फिर क्या हुआ ?"

उसकी छोटी-छोटी मंगोलियन आँखे रहस्यमय ढंग से फैल गईं, उन से कुछ व्यग्रता भी प्रकट हो रही थी ।

"देखो !" उसने खड़े होकर और करीब आकर कहा, "इसके बारे में मैं किसी से भी जिक्र नहीं करूँगा और न ही तुम करना...।"

"मेरा तो इरादा ही न था।"

"बिल्कुल ठीक। कुछ भी हो वह है तो हमारा मालिक। क्यों है ना?"

"हाँ तो फिर?"

"हमें किसी-न-किसी का तो हुक्म मानना ही होगा। वरना आपस में धींगा-मुश्ती शुरू न हो जायगी?"

वह अत्यंत गंभीरता और आहिस्तगी से बल्कि खुसर-पुसर के अन्दाज में बोल रहा था:

"कुछ आदर-सम्मान भी होना चाहिए, समझे!"

मेरी समझ में नहीं आया कि उसका मतलब क्या है और मुझे गुस्सा आ गया।

"जहन्नम मे जाओ तुम!"

शातुनोव ने मेरा हाथ पकड़ लिया और बड़े रहस्यमय ढंग से मंद स्वर में कहा:

"येगोर से डरने की कोई बात नहीं। भयावने सपनों को रोकने का कोई मन्त्र आता है तुम्हें? येगोर को रात के समय बड़े डरावने ख्वाब आते हैं। उसे मृत्यु से बड़ा डर लगता है। उसने बड़ा पाप किया है और उसकी आत्मा उसी के भय से दुखित रहती है...। एक बार रात को संयोगवश मैं अस्तबल के पास से गुजरा तो देखता क्या हूँ कि वह वहाँ मौजूद है और घुटनों के बल खड़ा गिड़गिड़ा रहा है, 'हे परमपिता परमेश्वर मुझे अचानक मृत्यु से बचाना!' समझे तुम?"

"नहीं, मैं नहीं समझा!"

"इस तरह उसको अपने वश में करो!"

"किस तरह?"

"डर से...। ताकत की हवा में न रहना। वह तुमसे पाँच गुना अधिक शक्तिशाली है।"

मुझे अनुभव हुआ कि यह व्यक्ति मेरी भलाई चाहता है। इसलिए मैंने उसे धन्यवाद दिया और हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। कुछ संकोच के बाद उसने भी अपना हाथ आगे किया। और जब मैंने उसकी गठीली हथेली गर्मजोशी से दबाई तो उसको शायद कुछ अफ-सोस हुआ और वह अपने होंठ चबाते हुए आँखें नीची करके कुछ बड़-बड़ाया जो मेरी समझ में न आया।

"क्या कहा था तुमने ?"

"जाने दो, अब कुछ नहीं कहता।" उसने झुँझलाहट दर्शाते हुए कहा और भटियारखाने के अन्दर चला गया। मैंने बोरे ढोने शुरू कर दिये। मेरे मस्तिष्क पर कुछ मिनट पहले की घटना बादल की नाईं छाई हुई थी।

मैंने रूसी जनता के बारे में पढ़ा था—उसकी मैत्रीपूर्ण भावना और समाज प्रेम भलाई की ओर उसका झुकाव। लेकिन लोगों को मैं अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर और भी ज्यादा निकट से जानता था क्योंकि दस वर्ष की आयु से ही मुझे अपनी जीविका आप कमानी पड़ी थी। घर और स्कूल के प्रभाव से मैं बिल्कुल स्वतन्त्र हो चुका था।

जो कुछ भी मैंने पढ़ा था मेरे व्यक्तिगत अनुभव स्वयं उसकी पुष्टि कर रहे थे। यह सच है कि लोग हर अच्छी चीज मे कुछ आकर्षण अनुभव करते हैं, उसे सराहते है, उसे प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं और इस अनगढ़, निराश जीवन को सुखमय और आशवान जीवन में परिणत करने की प्रतीक्षा करते हैं कि अच्छी चीजें किसी तरह उनके पास आजाये।

लेकिन मैं बहुधा सोचा करता हूँ कि अच्छी चीज से लोग इस प्रकार प्रेम करते हैं जिस प्रकार बच्चे परियों की कहानियों से। उसकी सुन्दरता और अप्राप्ता पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। उसकी ऐसी प्रतीक्षा

करते हैं जिस तरह किसी त्यौहार की । लेकिन अक्सर लोगों को उसकी शक्ति में विश्वास नहीं होता । और ऐसे तो बहुत ही कम होते हैं जो उसका संरक्षण और उसके विकास की देखभाल करते हों । उन का उदाहरण तो ऐसी बिनजुती धरती का–सा है जिस पर ढेरों घास उग आई हो और जहाँ अगर कहीं हवा के झोंके के साथ गेहूँ का कोई दाना आजाय तो उसकी नर्म व नाजुक कोंपलें पनपने ही नहीं पातीं बल्कि यों ही ठिठुर कर रह जाती हैं ।

शातुनोव से मुझे दिलचस्पी पैदा हो गई थी–यह व्यक्ति मुझे कुछ असाधारण–सा प्रतीत होता था ।.....

कोई एक सप्ताह तक मालिक भटियारखाने में आया ही नहीं और न ही उसने मुझे नौकरी से अलग किया । उधर मैंने भी कोई जोर नहीं दिया । मेरा कोई ठौर-ठिकाना था नहीं और फिर जिन्दगी यहाँ दिनों-दिन ज्यादा दिलचस्प होती जा रही थी ।

शातुनोव जानबूझ कर मुझसे कतराता था । मैं उससे घलमिल कर बातें करने का मौका ढूंढता रहा, लेकिन सफल न हो सका । मेरे प्रश्नों का गोलमोल उत्तर ज्यादा से ज्यादा यह होता जो वह नजरें नीची किये हुए और जुगाली करते हुए देता ।

"हाँ, काश कोई सही शब्द जानता ! लेकिन फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने मस्तिष्क का आप मालिक होता है ।.....

उसका व्यक्तित्व कुछ विलक्षण, गहन अन्धकार में छिपा हुआ था–

सन्यासी का-सा व्यक्तित्व, स्वभावतया वह अल्पभाषी था । बाजारी भाषा का कभी प्रयोग न करता था । परन्तु आराधना वह न तो सुबह उठकर करता था और न सोते समय । हाँ, जब खाना खाने बैठता तो अपनी गहरी छाती पर कास का चिन्ह जरूर बना लेता था । अवकाश का उसे यदि एक भी क्षण मिलता तो वह अन्धियारे से अन्धियारा कोना देखकर वहाँ जा बैठता । और या तो अपने फटे कपड़े सीने लग जाता या फिर अँधेरे में बैठा जुएँ मारा करता । और हमेशा वह बहुत ही नीचे सुरों में करीब-करीब फटी हुई आवाज मे यह गीत गुनगुनाता:

हाय कैसा दुखों ने घेरा है ?
आज क्यों हर तरफ अन्धेरा है ?

कोई व्यग्य से उससे पूछता:

"सिर्फ आज ? कल क्या तुम बहुत खुश थे ?"

जवाब दिये बिना और नजरें झुकाए ही वह गुनगुनाता रहता:

घर की खिची शराब है मैं चाहता नहीं.....

"खैर तुम्हारे पास तो है ही नहीं । मेरा मतलब है घर की खिंची हुई शराब ।"

उसने अपनी भवें तक न हिलाईं मानो वह बहरा हो । और दुखित लय में गाता रहा:

अपनी महबूब से मिलूं जाकर
पाँव इन्कार कर रहे हैं मगर
पाँव चलने की खो चुके ताकत
और दिल में भी कुछ नहीं हसरत

बंजारे याश्का को उदासीपूर्ण गीत नहीं आते थे ।

"ओ बे भेड़िये !" वह नाराज होकर चीखा और उसकी बत्तीसी दिखाई देने लगी । वह फिर हुंकारने लगा ।

अन्धकारमय कोने से मातमी गीत के शब्द धीरे-धीरे सुनाई देते रहे:

दिल पे रंजोअलम का साया है
हाय ग़म ने मुझे सताया है
ग़म से बोझिल है इस क़दर छाती
रात को नींद तक नहीं आती

"वानुक।" नानबाई ने हुक्म दिया। मुँह बन्द करो। यह तो इस धुएँ में घोंट कर मार देगा! आओ हम कोई और गीत गायें।"

सभी ने नृत्य का एक अश्लील गीत आरम्भ कर दिया। शातुनोव गहरी और भर्राई हुई आवाज निकालर हा था और उसके अंदाज़ में कुछ उदासीनता थी। गीत के असाधारणतया अश्लील शब्दों के मुकाबले में यह उदासीनता श्लीलता की एक निराली अदा मालूम होती थी। कभी-कभी गीत उसकी आवाज में दब कर लुप्त हो जाता था।

बजाहिर नानबाई और आर्तेम मुझ पर कुछ मेहरबान मालूम होते थे—यह एक नई किस्म का रवैया है जिसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। लेकिन इसको मैं महसूस जरूर कर सकता हूँ। रहा याश्का 'झुनझुना' तो मालिक से मेरी झड़प के बाद पहली ही रात को वह भूसे से भरा हुआ एक बोरा उस कोने में घसीट लाया जहाँ मैं सोया करता था और ऐलान कर दिया:

"हाँ तो अब मैं तुम्हारे पाथ थोया तरूँगा।"

"अच्छा।"

"मैं तहता हूँ, हम तुम दोस्त बन दायें।"

"चलो बन जाते हैं।"

वह फौरन लुढ़कता हुआ मेरे पास आ पहुँचा और बहुत ही राज़दाराना अन्दाज में अपनी मोटी जबान तेजी से चलाते हुए उसने मुझे अपना राज़दार बनाया।

"देतो मैंने एक तूहे तो धींदर से बातें तरते देथा था। सच तहता हूँ मैंने देथा था। एत दफा रात तो मेरी आँथ थुल दई। चाँदनी रात

थीं मैंने देथा ति मेरे पास ही एत तूहा नानथताई ततर-ततर तर था रहा है । मैं चुपचाप रेंदता हुआ उसते पास आया । उसी वक्त एत धींदर वहाँ आदया । फिर दो और आये और तूहे ने नानथताई थाना थोड़ दिया और अपनी भूरी मूंछें हिलाने लगा । हमारे गूंगे नितान्दर की तरह वे एत दूथरे ते बातें तर रहे थे। ना जाने त्या बातें तर रहे होंगे। तुछ बड़े मजे की बात होगी, हैना ! थो गये क्या ?"

"नहीं तो । फिर क्या हुआ ?"

"ऐथा मालूम होता था जैथे वह झींदरों थे पूछ रहा हो—तुम तहाँ ते आए हो ? और उन्होंने तहा— गाँव से !...तुम्हें, मालूम है जब गाँव में अकाल पड़ता है या जब आग लग जाती है तो गाँव थे आतर ये शहर में जमा हो जाते हैं उन्हें मालूम रहता है कि आग कब लगेगी। बुड्ढा बाबा कहता है उनथे, 'भाग जाओ तुम थव ।' और वे उछल तर भाग जाते हैं। तुमने तभी देखा है ?"

"अभी तक तो नहीं ।"

"मैंने देथा है ।"

और यह कहते ही उसने अचानक बड़े जोर से खर्राटा लिया जैसे उसका दम घुँट रहा हो और फिर सुबह तक 'झुनझुने' की आवाज नहीं सुनाई दी ।

अब मालिक ने अपना कायदा बना लिया था कि करीब-करीब रोजाना ही हमारे भटियारखाने में आये । और वह भी छाँट कर ऐसे समय आता था कि जबकि मैं कोई किस्सा कह रहा हूँ, अपने साथियों को किताब पढ़कर सुना रहा हूँ । दबे पाँव अंदर आकर वह मेरे बाँई तरफ खिड़की के पास लकड़ी के एक खाली डिब्बे पर बैठ जाता और अगर मैं उसे देख कर रुक जाता तो वह बड़े पैने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहता:

"बड़बड़ाए जाओ प्रोफेसर साहब । चलो काते जाओ अपना सूत,

डरो नहीं।"

और वह बड़ी देर तक बैठा रहता। खामोशी से गाल फुला-फुला कर अपनी चँदिया के छिदरे बालों के नीचे अपने छोटे-छोटे कान हिलाता रहता। बाल उसके इतने बारीक कटे हुए थे कि खोपड़ी पर चिपके हुए मुश्किल से नजर आते थे। कभी-कभी वह फटी हुई आवाज में पूछता:

"क्या, क्या ?"

और एक दिन जब मैं भूमण्डल के बारे मे बता रहा था तो वह बारीक और तेज आवाज मे चीखा:

"ठहरो ! और खुदा कहाँ से आ गया ?"

"वह यहीं है।"

"झूठ ! कहाँ है ?"

"अपनी बाइबिल भी नहीं जानते ?"

'अच्छा अब मुझे बनाओ नही—कहाँ है वह ?"

"और पृथ्वी का कोई आकार नहीं था। गहरी कदराओं मे घोर अन्धकार छाया हुआ था। और समुद्रों की सतह पर परमेश्वर की आत्मा उड़ रही थी।"

"समुद्र !" उसने विजेता की नाईं चीख कर कहा, "और तुम तो यह सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे थे कि पृथ्वी आग का गोला थी। ठहरो, मैं पादरी साहब से पूछूँगा कि किताबों में क्या आया है...।"

वह उठ खड़ा हुआ और ग़मगीन लहजे मे यह कहता चला गया:

"तुम बहुत कुछ जानते हो बड़बड़िए !—क्या ख्याल है ? तुम्हारे लिए यह अच्छा है क्या ?"

याश्का ने अपना सिर हिलाते हुए चिंतित स्वर में कहा:

"तुम्हें फाँसने के लिए वह जरूर कोई चाल चलेगा !"

उसके दो रोज बाद मुन्शी साश्का दौड़ता हुआ हमारे भटियार खाने में आया और हुक्म देते हुए चीख कर बोला:

"मालिक बुला रहा है तुम्हें !"

'झूनझुने' ने चपटी नाक वाला अपना दागदार मुँह उठाकर गम्भीरता से सलाह दी:

"दुसेरी अपने साथ लेते जाना।"

मै उठकर बाहर चला गया। बाकी सब हँसी रोकने की असफल चेष्टा कर रहे थे। तहखाने का कमरा सामान से खचाखच भरा हुआ था। चाय के समावार के करीब मेज के सामने हमारे मालिक के अलावा दो और मजदूर दोनोव और कुवशीनोव बैठे थे। मै दरवाजे में आकर रुक गया। मेरे मालिक ने बड़ी ही नर्म आवाज में, जिसमें कुछ दुर्भावना निहित थी, हुक्म दिया:

"अच्छा प्रोफेसर बड़बड़िए ! अब जरा मेहरबानी करके सूर्य और तारों का किस्सा सुना दीजिए कि ये सब कहाँ से और कैसे आये ?"

उसका चेहरा तमतमाया हुआ था। फुल्ली आँख सिकुड़ी हुई थी और मँजरी में एक नटखट चमक थी। दो और मुस्काते हुए चेहरे थे—एक सुर्ख अंगारे जैसा खरखरी बालों के चौखटे मे से झाँकता हुआ और दूसरा मटियाला फफूद खाया हुआ-सा नक्शा। समावार धीरे-धीरे सनसना रहा था। और ये अद्भुत लगने वाले सिर भाप के छल्लों में छिपे जा रहे थे। दीवार के सहारे लगे हुए पलँग पर बैठी हुई मालकिन सफेद चिमगादड़ मालूम होती थी। मसले हुए सोने के कपड़ों में से उस के बाजू निकले हुए थे। निचला होंठ लटका हुआ था और वह झूम-झूम कर मरीज़ों की तरह खाँस रही थी। कोने में पवित्र मूर्ति के पास रखे हुए दिए की मंद लौ भड़क रही थी मानो सर्दी के मारे काँप रही हो। खिड़कियों के दरम्यान दीवार पर एक तस्वीर लटक रही थी जिसमें एक स्त्री कमर तक नग्न अपनी गोद में एक बिल्ली लिये बैठी थी। जो खद उसी तरह उल्लेखनीय रूप से मोटी थी। कमरे में वोडका अचार और भुनी हुई मछली की मिली-जुली बू घुटी हुई थी। राहगीरों की टाँगों

की परछाइयाँ खिड़की में से यों दिखाई देतीं जैसे कोई बड़ी-बड़ी कैंचियों से कुछ काट रहा हो ।

मैं आगे बढ़ा और मेरा आक़ा मेज पर से दस्ती कोटा उठाकर खड़ा हो गया । और उसको मेज के किनारे पर बजाते हुए मुझसे कहा:

"नहीं, तुम वहीं खड़े रहो । पहले हमें कहानी सुनाओ और फिर मैं तुम्हारी आवभगत करूँगा...।"

मैंने सोचा कि बाद में मैं भी उसकी खातिर करूँगा और यह निश्चय करके मैंने बातचीत शुरू कर दी ।

पृथ्वी पर जो जीवन था उसमें कोई आनन्द नहीं था, सुख नहीं था और यही कारण था कि मुझे आकाश इतना प्यारा लगता था । अक्सर गर्मियों के मौसम में रात के समय मैं खेतों में निकल जाता । धरती पर चित लेट कर आस्मान की ओर देखता तो मुझे ऐसा मालूम होता कि हर एक सितारा अपनी सुनहरी किरण मेरे पास भेज रहा है, मेरे दिल में उतार रहा है । करोड़ों की सख्या में वे एक ही व्यवस्था में लगे हुए थे । और मैं भी जमीन के साथ उनके दरम्यान शून्य में तैर रहा था जैसे किसी बहुत बड़ी वीणा के तारों में रात के समय जमीन की जिन्दगी का खामोश राग मुझे जीवन के अनन्त सुख का गीत सुनाने लगता । ब्रह्मांड से आध्यात्मिक मिलन की ये भरपूर साअतें दिन भर के चिन्ताजनक प्रभावों की कटुता हृदय पर से इस प्रकार साफ कर देतीं जैसे किसी ने जादू कर दिया हो ।

और यहाँ इस गन्दे छोटे-से कमरे में तीन आक़ाओं और एक शराबी बुढ़िया खूसट के सामने जो मुझे मदहोश, बेरंग निगाहों से घूर रही थी, मैंने अपने आस-पास की हर घृणा करने वाली चीज की उपस्थिति भुला कर अपने विचारों की रौ में बहना शुरू कर दिया । मैंने देखा कि दो कुरूप चेहरे अपमानजनक अन्दाज में दाँत निकाल रहे थे

और मेरे मालिक ने अपने मुँह की चोंच बनाकर आहिस्ता-आस्हिता सीटी बजानी शुरू कर दी थी और उसकी मँजरी आँख मेरे चेहरे पर तेजी के साथ दौड़ रही थी और एक अद्‌भुद ढंग से मेरा परीक्षण कर रही थी। मैंने दोनोव को भर्राई हुई थकावट भरी आवाज में कहते सुना:

"कमबख्त बड़ा ही बातूनी है।"

और कुवशीनोव ने झुँझलाकर कहा:

"मुझसे पूछो तो यह शख्स है बड़ा चालाक।"

लेकिन इसके बाबजूद मैं बिल्कुल भी नहीं घबराया। मैं उनको अपनी बातें सुनने पर मजबूर करना चाहता था। और ऐसा मालूम होता था कि मेरी बातचीत का जादू उन पर चढ़ता जा रहा था।

अचानक मेरे मालिक ने मूर्ति की नाईं बैठे-बैठे आहिस्ता से अनुनासिक आवाज में कहा:

"अच्छा, बस काफी है बड़बड़िए! बहुत-बहुत शुक्रिया। बड़ा मज़ा आया! तुमने तमाम सितारों को अपनी-अपनी जगह जमा दिया है। अब जाओ और जाकर मेरे नन्हें-मुन्ने सुअरों को खाना खिलाओ।'

अब जब मैं वह जमाना याद करता हूँ तो बड़ा आनन्द आता है।' लेकिन उस समय मजे का तो खैर सवाल ही क्या उल्टा इतना-गुस्सा आया कि अब याद भी नहीं आता मैंने अपने आपको सँभाला क्योंकर!

इतना याद है कि जब मैं बेतहाशा भागता हुआ भटियारखाने में आया तो शातुनोव और आर्तेम ने मुझे सँभाला, सहारा देकर दालान में ले गये और पानी का एक ग्लास पिला कर मेरे होश व हवास ठीक किये। याश्का 'झुनझुने' ने बड़े विश्वास से कहा:

"क्यों मैं न कहता था? हाय, तुमने मेरी बात न मानी ना!"

और बंजारे ने गुर्राते, बड़बड़ाते हुए मेरी पीठ थपथपाई।

"मैं भला क्या करुँगा? मेरा इसमें क्या बस चले...जब उस पर भूत सवार होता है तो वह किसी की नहीं सुनता चाहे लाट पादरी ही

क्यों न आजाय ।"

सुअरों को खिलाना बड़ा ही नीच काम और अत्यन्त कठोर दण्ड समझा जाता था । और जब बाल्टियाँ भर के उनका खाना आता तो वे लाने वाले पर इस बुरी तरह झपटते कि उसका सँभलना मुश्किल हो जाता, अपनी मोटी-मोटी थूथनियाँ उसकी टाँगों में देदेते और अगर कोई फिसलकर कीचड़ में लथपथ न हो जाता तो वह बड़ा ही भाग्य-शाली होता था ।

सुअरों के अहाते में दाखिल होते ही फौरन दीवार का सहारा ढूँढना पड़ता था । सुअरों को लातें मार-मार के भगा कर बर्तन में उनका खाना उलट कर फौरन ही वहाँ से भाग आना पड़ता था क्योंकि जब उन सुअरों को लातें पड़तीं तो गुस्से में आकर वे काटने दौड़ते थे । उस समय और भी बुरा मालूम हुआ जब येगोर ने भटियारखाने का दरवाजा खोलकर भयानक आवाज में एलान किया:

"ऐ ओ कात्सापी* । चल सुअरों को अन्दर ला ।"

इसका अर्थ यह था कि बेकाबू जानवर आँगन में छुपे हुए थे और डरबे में जाना नहीं चाहते थे । ऐसी सूरत में पाँच-छः आदमी आँगन में दौड़ जाते । इस तरह छीन-छान, गाली-गलौच और भाग-दौड़ शुरू हो जाती । और मालिक इस तूफानेबदतमीजी से बड़ा आनन्द लेता । पहले-पहल तो ये लोग इस दीवानेपन में खुद भी मजा लेते क्योंकि इस तरह किसी हद तक उनकी काम की समानता का जादू टूटता था । लेकिन जल्द ही वे थक कर चूर हो जाते । और उनका दम फूल जाता । जिद्दी सुअर आँगन में इधर-उधर लुढ़कते-फिरते ओर पीछा करने वाले आदमियों को धक्के देकर गिरा देते और मालिक खड़ा तमाशा देखता रहता । इस भागम-दौड़ का नशा उस पर भी छा जाता और वह अपनी जगह ही खड़े-खड़े उछलता, कूदता, सीटियाँ बजाता और नारे बुलन्द करता ।

---

* प्राचीन काल में रूसियों के उपहास के लिए यूक्रेनी उन्हें इसी अपमानजनक विशेषण से पुकारते थे——अनु०

"शाबाश छोड़ना नहीं ! खाल खेंच लेना इनकी ।"

जब कोई आदमी उलझ कर जमीन पर गिर पड़ता तो मालिक बड़ा ही खुश होता और फिर जोर-जोर से चीख कर अपनी मोटी-मोटी औरतों जैसी जाँघों को पीटता और मारे हँसी के लोट-पोट हो जाता ।

गुलाबी-गुलाबी थूथनियाँ पूरे आँगन को चीरती हुई फिर रही होतीं और उनके पीछे दौड़ते-दहाड़ते हुए चंद मरियल सूखे इन्सान जिनके जिस्म आटे में लिथड़े हुए होते, बदन पर गंदे चिथड़े और नगे पैरों में फटे जूते—ये लोग दौड़ते और गिरते और सुअर की पिछली दोनों टाँगे पकड़े पूरे आँगन में घसिटते फिरते । यह दृश्य भी वास्तव में बड़ा ही विलक्षण और हास्यास्पद होता था ।

एक दिन एक सुअर सहन में से भाग कर सड़क पर जा निकला और हम छः लड़के दो घण्टे तक उसका पीछा करते बाजारों मे दौड़ते फिरे यहाँ तक कि एक राह पर तातारी ने सुअर की अगली दोनों टांगे डण्डा मार कर जख्मी कर दीं और उसके बाद हम सुअर को चटाई पर रख कर घर वापस ले आये । और हमारे पड़ोसियों को यह तमाशा देख कर बड़ा मजा आया । तातारी देख कर अपने सर हिलाते और घृणा से थूकते लेकिन रूसियों ने एक छोटा-सा जुलूस बना लिया और हमारे साथ-साथ चलने लगे । एक सँवलाए हुए तेज तर्रार विद्यार्थी ने अपनी टोपी उतार कर मचलते हुए जानवर की तरफ इशारा किया और सहानुभूति भरे स्वर में आर्तेम से पूछा:

"कौन है, मा या बहन ?"

"मालिक !" थके-माँदे और झुँझलाए हुए आर्तेम ने झिड़क कर उत्तर दिया ।

हमें सुअरों से नफरत थी । ये हमसे अच्छी तरह रहते थे और सिवाय मालिक के सबके लिए कष्टकर और अपमानजनक थे । फिर हमें उनकी सेहत ओर तन्दुरुस्ती की खबरगीरी करनी पड़ती थी जो

बड़ी ही कष्टकर थी ।

जब भटियारखानेवालों को मालूम हुआ कि मुझे एक हफ्ते तक सुअरों की देखभाल करनी होगी तो कुछ लोगों ने मुझसे इस खास रूसी उत्साह से सहानुभूति प्रकट की जो वैसे बहुत असह्य होता है और दिल पर गोंद की तरह चिपकता है । और उसकी सारी शक्ति छीन लेता है । अक्सर लोगों ने उदासीनतापूर्ण चुप साध ली लेकिन कुजिन ने उपदेश देते हुए भुनभुनाते हुए कहा:

"कोई परवाह नहीं ! मालिक हुक्म देता है अब वह हुक्म बजा लेना तुम्हारा काम है ! आखिर हम किसकी रोटी खाते हैं ?"

आर्तेम चीख कर बोला:

"ओ बुढ्ढे खूसट ! काणे चुग़लखोर...।"

"अच्छा, और नहीं तो क्या ?" बूढ़े ने कहा ।

"आज, आज भी जाकर कह दे । कह देना जाकर मालिक से...।"

कुजिन ने बात काटते हुए बड़े सन्तोष से उत्तर दिया:

"सो तो कहूँगा ही ! मेरे यार मैं तो सब कुछ ही कह दूँगा । मैं तो जीता ही सच बोल कर हूँ...।"

बंजारे ने एक मोटी-सी गाली दी और फिर हमेशा के विपरीत मुँह फुलाकर खामोश बैठ गया ।

रात के इस संवेदनाशील क्षण में जबकि मैं अपने कोने में लेटा भय व आतंक के कारण पत्थर बना थके-हारे आदमियों के जोर-ज़ोर के खर्राटे सुन रहा था और पड़े-पड़े अपने दिमाग़ में जिन्दगी, इन्सान, सच्चाई और आत्मा जैसे गूँगे और समझ में न आने वाले शब्द बार-बार व्यवस्थित ढंग से जमा रहा था तो नानबाई चुपके-चुपके रेंगता हुआ मेरे पास आया और क़रीब ही लेट गया ।

"सो तो नहीं रहे ?"

"नहीं !"

"बड़ी मुसीबतें आ रही हैं भाई ?"

उसने अपने लिए एक सिगरेट बनाया और सुलगाया। छोटी-सी सुर्ख लौ में उसकी दाढ़ी के रेशमी तार और उसकी नाक की चोंच रोशनी के हाले में आ गई। जली हुई राख फूँक मार कर उड़ाते हुए बंजारे ने मेरे कान में कहा:

"देखो, सुअरों को जहर देदो। बड़ी आसान बात है। बस यह करना कि गर्म पानी में थोड़ा-सा नमक मिलाकर उन्हें दे देना। जानवरों के हलक में सूजन आजाएगी और दम घुट कर मर जायेंगे।"

"लेकिन इससे फायदा क्या ?"

"पहले तो यह कि हम सबकी मुश्किलें आसान हो जायेंगी और मालिक को एक नुक्सान पहुँच जायेगा। मैं तुम को सलाह दूँगा कि तुम यहाँ से चले जाओ। मैं साश्का से कहकर तुम्हारा पहिचानपत्रक आक़ा के पास से चोरी करा लूँगा—भगवान ने चाहा तो जरूर ! क्यों क्या कहते हो ?"

"नहीं मैं नहीं जाऊँगा !"

"तुम्हारी मर्जी ! बहरहाल तुम यहाँ ज्यादा टिक नहीं सकते। तुम्हारी कमर वह जल्दी ही तोड़ देगा।" अपने दोनों घुटने सिकोड़ कर सीने से लगा कर और नींद की-सी हालत में झूमते हुए उसने बहुत धीरे से कहा:

"मैं तो तुम्हारी भलाई चाहता हूँ, भगवान की कसम दिल से चाहता हूँ। सचमुच तुम चले जाओ...। जब से तुम यहाँ आये हो हमारी हालत बदतर हो गई है। मालूम होता है तुम उसे छेड़ते हो और वह बरसता है हम सब पर। समझ लो सब लोग तुमसे आजिज़ आ गये हैं। बहुत मुमकिन है कि वे तुम्हारे साथ बुरी तरह पेश आयें।"

"और तुम ?"

"मैं ?"

"क्या तुम भी आजिज़ आ गये हो मुझसे ?"

जवाब देने से पहले वह अपनी सिगरेट की पीली चमक को खामोशी के साथ घूरता रहा। फिर बेदिली से बोला—

"मुझसे अगर पूछते हो तो सुनो—मटर के पौधे दलदल में नहीं लगाये जाते।"

"लेकिन जो कुछ मैं कहता हूँ क्या वह सच नहीं...?"

"सच तो है, ठीक है लेकिन इससे फायदा क्या ? एक चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता। तुम कहो या न कहो इससे फर्क ही क्या पड़ता है ? तुम दूसरों पर हद से ज्यादा एतबार कर लेते हो। भैया ! खबरदार ! लोगों पर एतबार करना खतरनाक होता है।"

"तुम पर भी ?"

"हाँ हाँ मुझ पर भी ! मैं कौन हूँ ? क्या मुझ पर भरोसा किया जा सकता है ? आज मैं कुछ हूँ, कल कुछ और.....! और बाकी सब भी...।"

मौसम सर्द था और खमीरी आटे की तेज बू नथुनों को चीरती हुई घुस रही थी। चारों तरफ लोग मिट्टी के ढेर की तरह पड़े जोर-जोर से साँस ले रहे थे। एक आदमी सोते-सोते बड़बड़ा रहा था:

"नताशा...नता...हा...।"

कोई कराह रहा था और बुरी तरह सिसकियाँ भर रहा था। शायद वह ख्वाब देख रहा होगा कि कोई उसे मार रहा है। तीन अँधियारी खिड़कियाँ गंदी दीवार में से रात को घूर रही थीं—गहरी सुरंगों के मोखों की तरह। खिड़कियों के छज्जों से पानी की बूंदे टपक रही थीं। बेकरी से तमाचे मारने और थपथप की धीमी आवाज आ रही थी। नानबाई का सहायक गूंगा और बहरा निकांदर आटा गूँध रहा था।

बंजारे ने सोच-विचार करते हुए बहुत नर्मी और आहिस्तगी से कहा:

"तुम्हें चाहिये की देहात मे चले जाओ और स्कूल मास्टर बन जाओ। तुम्हारे लिए सबसे ज्यादा मुनासिब काम यही है। विश्वास करो, बड़ी मजेदार जिंदगी होती है। और बिल्कुल सीधी-सादी! निश्चित और आत्मा को सुखी रखने वाली। यदि मैं शिक्षित होता तो शुरू ही से स्कूल मास्टर बन जाता। मुझे छोटे-छोटे बच्चों पर बड़ा ही प्यार आता है और औरतों पर भी। ये औरतें तो मेरे दुर्भाग्य का कारण हैं। ज्योंही कोई मामूली-सी लडकी मेरी नजर पड़ी और बस मैं गया काम से। मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे कि वह मुझे घसीटे लिए जा रही हो। अगर मेरी ख़सलत ऐसी न होती और अगर मुझे खेती पसन्द आ जाती तो शायद मैंने किसी अच्छी औरत से शादी करने का फैसला कर लिया होता...हम...मैं और वह मिलकर बच्चों का लालन-पालन करते—कम से कम एक दर्जन तो होते साले। और यहाँ—एक अच्छी सूरत वाली औरत है और दूसरी भी इतनी ही हसीन और सब-की-सब सहज ही प्राप्य है और इसी तरह लश्टम-पश्टम गुजर होती रहती है।...भगवान जाने क्यों? बिल्कुल ऐसी बात हुई जैसे कोई जंगली बेर तोड़ कर इकठ्ठे किये जाता हो। लालच इतना हो जाता है कि हालाँकि देख रहे है कि टोकरी भर चुकी है लेकिन नहीं जी यही चाहता है कि अभी दो चार और तोड़ लो...।"

उसने अँगड़ाई लेते हुए दोनों हाथ उसी तरह फैला दिये जैसे किसी से बग़लगीर होने वाला हो। लेकिन फिर अचानक गंभीर और दो टूक फैसला करने के स्वर में बोला-

"अच्छा तो फिर सुअरों के बारे में क्या ख्याल है?"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं करूँगा।"

"बड़े अफसोस की बात है। तुम्हारा क्या जाता है?"

"नहीं।"

बंजारा चुपचाप सरकता हुआ आतिश्दान के पास अपने कोने में वापस चला गया।

निस्तब्धता छाई हुई थी। मुझे कुछ ऐसा गुमान हुआ जैसे कुजिन की इकलौती आँख मेज के नीचे से चमक रही हो। जहाँ वह सोया करता था।

यह काल्पनिक चित्र भयभीत चिमगादड़ की नाईं गंदे फर्श पर सोते हुए लोगों के ऊपर से फड़फड़ाती हुई, सीली हुई काली दीवारों की चीकट मेहराबों से टकरा-टकरा कर आख़िरकार बेजान होकर गिरती हुई दिखाई दिया।

"ओ बे!" कोई ख्वाब में बड़बड़ाया। "इधर दे!...मुझे कुल्हाड़ी दे...!"

सुअरों को किसी ने जहर दे दिया।

दो दिन बाद सुबह को जब मैं सुअरों के डरबे में गया तो पहले की तरह मुझ पर झपटे नहीं बल्कि अँधियारे कोने में एक–दूसरे पर लदे पडे रहे। अनजानी भारी गुर्राहट सुनाई दी। लालटेन की रोशनी से मैंने उन्हें ग़ौर से देखा। और मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि रात भर में जानवरों की आँखें पहले से बड़ी हो गई हैं और पीली पलकों में दीदे उबल पड़े हैं। उन आँखों में मुझे एक इल्तिजा नजर आ रही थी, खौफ-सा छाया नजर आता था जिसमें एक हद तक शिकायत भी मिली जुली थी। उनकी उखड़ी-उखड़ी साँस दुर्गन्धमय अन्धकार को दहला रही थी। और इन्सान के कराहने की-सी आवाजें गूंजती सुनाई दे रही थीं।

"खतम हो गये?" मैंने अपने आप ही से कहा। अपने दिल में मुझे

एक कपक सी महसूस हुई।

मैं भटियारखाने में गया और बजारे को बुला कर बरामदे में लाया। वह हँसता हुआ और अपनी दाढ़ी–मूछों पर हाथ फेरता हुआ बाहर आया।

"क्या तुमने सुअरों को जहर दिलवाया है ?"

वह बेचैनी की स्थिति में कभी एक टाँग पर खड़ा हुआ, कभी दूसरी पर। फिर बड़ी उत्सुकता से उसने पूछा:

"मर गये क्या ? आओ जरा चल कर देखें।"

आँगन में उसने चिढ़ाते हुए पूछा:

"मालिक से कहने जा रहे हो ?"

"मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। दाढ़ी के बालों को अपनी उँगली में लपेटते हुए उसने लज्जित हो कहा—

"याश्का की कारस्तानी है यह ! बदमाश कहीं का। उसने हमें बाते करते सुन लिया था। और कल क्या कहता है मुझसे, "चचा याश्का मैं करूँगा यह काम ! मैं पिलाऊँगा उन्हें नमक का पानी ! मैने उससे कहा, "कहीं कर न बैठना ऐसा...।"

डरबे के दरवाजे पर रुक कर और आँखे सुकेड़ कर अन्धेरे में झाँकते हुए जहाँ से जानवरों की उखड़ी हुई साँस की ग़र-ग़र और फश-फश सुनाई दे रही थी–उसने अपनी ठोढ़ी खुजाई, माथे पर शिकने डालीं और तुर्श लहजे में कहा:

"कितना सड़ियल काम है यह ! झूठ बोलने में तो मैं पटु हूँ। और सच तो यह है कि मुझे यह अच्छा लगता है। लेकिन कभी-कभी तो ऐसा होता है कि मुझसे झूठ बोला ही नहीं जाता...बोलते ही नहीं बनता।"

वापसी पर सर्दी में सिकुड़ते हुए, बड़बड़ाते हुए उसने मेरी आँखों में आँखें डाल कर देखा और चबा–चबा कर बोलते हुए कहा:

"अरे तूफान खड़ा हो जायगा। मालिक तो अपने आपे में न रहेगा

याश्का की तो समझो गर्दन मोड़ कर रख देगा ।

"याश्का से इसका क्या सम्बन्ध ?"

"लेकिन हुआ तो यही है ।" बंजारे ने आँख मारते हुए कहा । "हमारे यहाँ हमेशा यही होता है कि करें बड़े और भुगतें छोटे ।"

यह कहकर उसने फौरन ही मुझे घूरा । और चुभती हुई निगाहों से देखता हुआ और यह बड़बड़ाता हुआ वह दालान में चला गया:

"जाओ, शिकायत कर दो ।"

मैं आक़ा के पास गया । वह अभी-अभी सोकर उठा था । उसका चेहरा मुर्झाया हुआ और मटियाला-सा था । उसके स्याह बाल असमतल खोपड़ी के गूमड़ों पर चिपके हुए थे । टाँगे चीरे वह मेज के सामने बैठा था । उसकी लम्बी गुलाबी कमीस घुटनों तक खिची हुई थी और कमीस के दामन में लिपटी-लिपटाई एक भूरी बिल्ली बैठी थी ।

मालकिन चाय के लिए मेज सजा रही थी और जब वह कमरे में इधर से उधर जाती तो ऐसा मालम होता था कि जैसे कोई छिपे हुए हाथ चिथड़ों की किसी पोटली को घसीट रहे हों ।

"क्या बात है ?" उसने कुछ मुस्कराते हुए पूछा ।

"सुअर बीमार हो गये हैं ।"

उसने बिल्ली को उठाकर मेरे कदमों में फेक दिया और मुट्ठियाँ भींच कर बैल की तरह मुझ पर झपटा । उसकी दाहिनी आँख से शोले से निकल रहे थे और बायीं आँख सुर्ख होती जा रही थी, उसमें आँसू डबडबा आये थे ।

"क्या,क्या ?" उसने हाँपते हुए कहा ।

"जरा जल्दी से डाक्टर को बुला लाओ ।"

मेरे करीब आते हुए उसने मसखरेपन से अपने कानों पर हाथ फेरे जो यकायक सूजे हुए मालूम हो रहे थे और नीले पड़ गये थे । उसने दुःख भरे स्वर में कुछ अजीब ढँग से गुर्राते हुए कहा:

"बदमाश कहीं के ! मुझे मालूम है क्या मामला है ?"

मालकिन भी सरकती हुई करीब आगई और मैंने उसकी कंपकँपाती हुई, भर्राई हुई आवाज पहली बार सुनी।

"पुलिस को बुलाओ ! वासिया, जल्दी पुलिस को बुलाओ।"

उसके मुर्झाए हुए चीथड़ों जैसे गाल लरज़ रहे थे। मारे डर के उसका बड़ा-सा मुँह खुला–का–खुला रह गया था और असमान स्याह दाँत दिखाई देने लगे थे। आका ने उसे बड़ी बेदर्दी से एक तरफ ढकेल दिया। दीवार पर लटके हुए कुछ कपड़े घसीटे और उनकी पोटली बगल में दबाकर दरवाजे की तरफ लपका।

लेकिन बाहर आँगन में पहुँचकर सुअरों के डरबे में झाँक कर और जानवरों की उखड़ी-उखड़ी साँसें सुन कर उसने संतोष के साथ कहा:

"तीन आदमियों को बाहर बुला लाओ।"

और जब शातुनोव, आर्तेम और भूतपूर्व सैनिक भटियारखाने से बाहर आ गये तो उसने हमारी तरफ देखे बगैर ही तड़खकर कहा:

"बाहर निकाल लाओ इन्हें।"

हम चार गंदी लाशों को उठा कर लाये और उन्हें आँगन में डाल दिया। आस्मान पर हल्की-सी रोशनी फैल गई थी। जमीन पर रखी हुई लालटैन आहिस्ता-आहिस्ता गिरते हुए बर्फ के गालों पर और सुअरों के भारी सिरों पर किरणें डाल रही थीं। सुअरों में से एक का दीदा आँख में से निकल पड़ा था जैसे कि काँटे में फसी हुई मछली का दीदा।

अपने कन्धों पर लोमड़ी के समूर का कोट डाले और आखिरी साँसें लेते हुए जानवरों पर सिर झुकाए आक़ा खामोश और अचल खड़ा था।

"जाओ, अपना काम करो ! येगोर को यहाँ भेज दो।" उसने खोखली आवाज में कहा।

"बड़ा सदमा हुआ है उसे !" जब हम बरामदे में पड़े हुए बोरों के पास पहुँचे तो आर्तेम ने सरगोशी में कहा, "ऐसा धक्का पहुँचा है उसे कि नाराज होना भी भूल गया ।"

दालान में मैं सबसे पीछे रह गया । और दरारों में से झाँक कर सहन में देखा लालटैन की रोशनी सुबह के अँधेरे से जूझ रही थी। उसकी रोशनी में चार सफेद बोरे मुश्किल से दिखाई दे रहे थे जो सीटी की-सी आवाज और एक किस्म की घड़घड़ाहट के साथ कभी फूल जाते और फिर पिचक जाते थे । मालिक नंगे सिर उन पर झुका हुआ था । उसके बालों की लटें चेहरे पर बिखरी हुई थीं । इसी हालत में वह बहुत देर तक चुपचाप खड़ा रहा । समूर के कोट से ढँका हुआ उसका शरीर घण्टी की भाँति दिखाई देरहा था ।.....फिर मैंने सूँ-सूँ की आवाज और इन्सानी खुसर-पुसर की आवाज सुनी ।

"क्या हुआ मेरे प्यारो । दुःख होता है ? बेचारे...त्च-त्च...।"

ऐसा मालूम हुआ जैसे जानवर और ज्यादा जोर से साँस लेने लगे हों ।

उसने अपना सर उठाया, चारों तरफ देखा और मुझे ऐसा दिखाई दिया कि उसके गाल आंसुओं से तर थे । अब उसने अपने दोनों हाथों से आँसू पोछ डाले थे और एक रँजीदा बच्चे की तरह वहाँ से परे हट गया, खाली पीपे में से मुट्ठी भर घास निकाली, वापस गया और ज़मीन पर बैठ कर सुअर की गंदी थूथनी पोंछने लगा । फिर जैसे चौंक कर घास फेंक दी, उठ खड़ा हुआ और आहिस्ता–आहिस्ता सुअरों के गिर्द घूमने लगा ।

एक चक्कर लगाया, फिर दूसरा जरा तेज कदमों से, फिर तो एक दम उसने दौड़ लगाना शुरू कर दी । उछलता-कूदता, घूसे तान कर और बेतहाशा तेज़ दौड़ कर चक्कर लगाने लगा । उसके कोट के दामन टाँगों में फरफरा रहे थे वह उनमें उलझ गया और गिरते-गिरते बचा ।

और फिर मुंडिया हिलाता, मुंह बिसूरता रुक गया । आखिरकार— यह भी अचानक हुआ जैसे कि उसकी टाँगों में दम न रहा हो । कूल्हे टिका कर वह जमीन पर बैठ गया और जैसे तातारी लोग प्रार्थना के बाद करते हैं उसने हथेलियों से अपना चेहरा मलना शुरू कर दिया ।

"पुच-पुच...मेरे नन्हें-मुन्ने जानवरों । पुच-पुच ।"

येगोर झूमता-झामता, मुँह में पाइप दबाए एक कोने के पीछे से प्रकट हुआ । पाइप की चिंगारी कभी-कभी उसके अँधेरे में छिपे हुए चेहरे को रोशन कर देती थी । जो ऐसा मालूम होता था जैसे किसी ने एक गठीले तख्ते को जल्दी-जल्दी तराश कर इन्सानी चेहरे की शक्ल दे दी हो । उसके सुर्ख कान की मोटी-सी लौ में बाली भी चमक उठती थी ।

"येगोरी !" मालिक ने आहिस्ता से आवाज दी ।

"हाँ ।"

"जानवरों को उन्होंने जहर दे दिया है ।....."

"उसने ?"

"नहीं ।"

"तो फिर किसने ?"

"याश्का और आत्युंखोव ने । कुजिन ने मुझे बताया है ।..."

"तो क्या ठोंकें उनको ?"

उठ कर खड़े होते हुए आका ने थकी हुई आवाज में कहा:

"नहीं, अभी ठहरो ।"

"कितने नीच हैं ये सब ।" येगोर गुर्राया ।

हाँ S S, नहीं । लेकिन मैं पूछता हूँ जानवरों का क्या क़सूर था, क्यों ?"

येगोर ने जमीन पर थूका लेकिन थूक इत्तेफाक़ से उसके जूते पर जा गिरा । फिर उसने अपना पैर उठाया और अपने कोट के दामन में जूता पोंछ डाला ।

सफेद,ठण्ढा आस्मान छोटे-से आँगन पर शामियाने की तरह झुका हुआ था । जाड़ों का उजाड़-उजाड़ दिन बड़ी अनिच्छा से निकल रहा था ।

येगोर दम तोड़ते हुए जानवरों के पास गया ।

"इन्हें मार डालना चाहिए ।"

"किसलिए ?" मालिक ने सिर को झटका देकर पूछा । "जी लेने दो जब तक जीते हैं !"...

"मैं तो इन्हें मारकर रहूँगा और फिर हम इन्हें भटियारे के हाथ बेच देंगे । इनका गोश्त तो नही बेचा जा सकता ।"

"भटियारा इन्हें नहीं लेगा ।" सेम्योनोव ने जमीन पर बैठ और एक सुअर की सूजी हुई गर्दन टटोलते हुए कहा ।

"क्या बातें करते हो, लेगा क्यों नहीं ? मैं कहूँगा कि तुम इनसे उक्ता गए थे इसलिए इन्हें ज़िबह करा दिया । मैं कहूँगा कि ये बिल्कुल तन्दुरुस्त थे ।"

मालिक खामोश हो गया ।

"अच्छा बोलो तो अब इनका क्या जाय ?" येगोर ने जोर दिया ।

"क्या ?"

आक़ा उठ खड़ा हुआ और एक बार फिर सुअरों के चारों तरफ आहिस्ता-आहिस्ता टहलने लगा और दबी आवाज में गुनगुनाने लगा:

"नन्हें-मुन्ने, मेरे प्यारे प्यारे...।"

वह रुक गया, चारों तरफ देखा और अनायास बोल पड़ा:

"कर दो ज़िबह !"

हम जबरदस्त तूफान बरपा होने, नौकरियों से बरखास्त होने की आशा कर रहे थे । हमारा विचार था कि मालिक सजा के तौर पर एक और बोरा नानखताइर्या बनवाने के लिए डलवा देगा । बंजारा बहुत दुःखी नजर आ रहा था लेकिन वह बनने की कोशिश कर रहा

था और कृत्रिम लापरवाही से जोर-जोर से कह रहा था—

"सेंको और जोश दो !"

कारखाने में घुटी-घुटी खामोशी छाई हुई थी । सब मजदूर मुझे प्रकोपपूर्ण दृष्टि से देख रहे थे और कुजिन बड़बड़ा रहा था:

"सजा सब ही को मिलेगी—कसूरवार को भी और बेकसूर को भी...।"

वातावरण और भी दूषित हो गया । बातों-बातों में झगड़े होने लगे । और जब हम खाना खाने बैठे तो सिपाही मिलोव जबड़े चीर कर मुस्कराने लगा और फिर मूर्खतापूर्ण ठहाका उसने लगाया और कुजिन की पेशानी पर अपने चमचे से ठोंग मार दी ।

बूढ़े ने कराहते हुए अपना सिर हाथों में दबा लिया । अपनी इक-लौती आँख से आश्चर्यचकित होकर चारों तरफ देखने लगा और बिसू-रते हुए बोला:

"भाइयो ! यह क्यों ?"

एक आम शोर व गुल बुलंद हो गया । बीच-बीच में गालियाँ सुनाई देती थीं और तीन आदमी मुक्का ताने सिपाही पर बरस पड़ने को पर तोलने लगे । और वह दीवार से टेक लगाये हँसी के साथ फुदकने लगा और बोला:

"यह मक्कारी की सजा है । येगोर ने मुझे सब बता दिया है...। आक़ा जानता है कि सुअरों को जहर किसने दिया है...।"

पीला चेहरा और कुछ अजीब तनी हुई-सी हालत में बंजारातँदूर के पास बैठा-बैठा एकदम कुजिन पर झपटा और उसकी गुद्दी दबोच ली ।

"फिर ? अबे इस तेरी जबान ने जो तेरी मरम्मत कराई है उससे पेट नहीं भरा क्या ! नीच, बदमाश कहीं के ?"

"तुम कहोगे कि शायद सच नहीं है यह !" कुजिन ने अपने मुर्झाए हुए छोटे-से चेहरे को छिपाते हुए थरथराती हुई बूढ़ी आवाज में कहा,

"क्या तुमने शुरू नहीं किया था यह सब कुछ ? क्या मैं सुन नहीं रहा था कि तुमने बड़बड़िये से यह काम कराने की कोशिश की थी ?"

बन्जारे ने गुर्राते हुए अपना मुक्का ताना। लेकिन आर्तेम उसके कंधे पर लटक गया ।

"मारो नहीं याश्का ! छोड़ो, जाने भी दो ।"

अब खींचा-तानी शुरू हो गई। याश्का, शातुनोव और आर्तेम की पकड़ से निकलने के लिए लातें चला रहा था, भन्ना रहा था । और

"आओ एक-एक कर के लड़ लो ! आओ हिम्मत हो तो !"

विकृत और जमा हुआ खून खराब खाने और दूषित वायु के कारण विषाक्त, संतोष तथा दैन्य से सहे हुए अत्याचार के विष में बझा हुआ रक्त आज इन लोगों के सिर पर चढ़ आया था; चेहरे सुर्ख हो गये थे; कानों में से ज्वालाएँ निकल रही थीं, लाल–लाल आँखें अन्धे गुस्से में चमक रही थीं और कटकटाते हुए दाँतों ने तमाम चेहरों को हवन्नक और विकृत कर दिया था ।

आर्तेम दौड़ता हुआ आया और लेस्चोव के जंगलियों जैसे मुंह के सामने आकर चीखा:

"मालिक आ गया।"

हुल्लड़बाजी इस प्रकार समाप्त हो गई जिस प्रकार आँधी के सामने कूड़ा-करकट गायब हो जाता है । हर व्यक्ति अपनी जगह पर वापस आ गया। पलक झपकाते ही निस्तब्धता छा गई। केवल थकावट और क्रोध के कारण फूली हुई साँस की धौंकनियाँ-सी चलती सुनाई दे रही थीं। और चमचे दबोचे हुए हाथ कँपकँपा रहे थे।

दो नानबाई बेकरी के दरवाजे की मेहराब के अँदर खड़े थे । एक तो था चुस्त व चालाक याकोव विश्नेवस्की और हृष्ट-पुष्ट, दमे का रोगी वाश्किन जिसका चेहरा ईंट जैसा लाल था और आँखें उल्लू जैसी गोल ।

उसकी कुपित आँखें बड़ी भयंकर मालूम हो रही थीं।

"छोड़ दो मुझे ! आज मैं इसे जान से मार कर ही दम लूंगा...।"

सत्यवादी, नाटेकद के बूढ़े की मैली कमीस का गरेबान बन्जारे की मुठ्ठी में था। उसके मुँह से झाग निकल रहे थे और वह हकला-हकला कर कहे जा रहा था:

"अगर कोई बात न होगी तो मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। लेकिन अगर बदमाशियाँ होती रहीं तो मैं कहूँगा और जरूर कहूँगा। हाँ कहूँगा चाहे तुम मेरी तिक्का-बोटी ही क्यों न कर डालो बदमाशो !"

यह कह कर वह अचानक याश्का पर धड़ाम से गिर पड़ा। उसके सर पर जोर का दुहत्तर मारकर उसे जमीन पर दे पटका। दो-तीन लातें रसीद कीं और युवकों की-सी आश्चर्यजनक फुर्ती से उसका बदन रौंदना शुरू कर दिया।

"तूने, तूने ! हरामी पिल्ले तूने डाला था नमक...तूने...।"

आर्तेम ने एक छलाँग लगाई और बूढ़े के सीने पर अपना सिर दे मारा। बूढ़ा एक चीख मार कर फर्श पर गिर पड़ा और वहीं पड़े-पड़े कराहता रहा।

झल्लाया हुआ याश्का मोटी-मोटी गालियाँ देता हुआ और सिसकियाँ भरता हुआ शेर की तरह उस पर झपटा और झट से उसकी कमीज फाड़ कर उसे बेतहाशा मुक्के मारने शुरू कर दिये। और मैं उसे रोकने की कोशिश करता रहा। हमारे इर्द-गिर्द जन्नाटे के साथ लातें चल रही थीं धमा-चौकड़ी हो रही थी और धूल व गर्द के बादल छा गये थे। जंगलियों की नाई दाँत निकाले बन्जारा दीवानों की तरह चीख रहा था। बड़े जोर का मल्ल आरम्भ हो चुका था। खुद मेरे पीछे से मुक्कों के धमाकों और दाँतों के कटकटाने की आवाजें आ रही थीं। घुँघराले बालों वाला एक भैंगा जिसका नाम लेस्चोव था, मेरे कंधे हिलाकर ललकारा:

"क्यों, क्या दो-दो हाथ भी नहीं होंगे ?" वाश्किन ने निराश व उदास स्वर में कहा। विश्नेवस्की ने अपने छोटे-से हाथ से जिस पर जले हुए के बहुत से निशान थे, अपनी बारीक मूँछों को मरोड़ते हुए बकरी की तरह मिमिया कर कहा:

"अबे गँवारो। आटे के कीड़ो।.. "

सभी का भरा हुआ गुस्सा उन पर उतरा। कारखाने के सब आदमी उन्हें बुरी तरह गालियाँ देने लगे। उन नानबाइयों से सभी को नफरत थी। उनका काम हमसे आसान था और तनख्वाहें ज्यादा। उन्होंने भी गालियों का जवाब गालियों से दिया। करीब था कि हाथा-पाई शुरू हो जाती कि अचानक रोता-बिसूरता हवन्नक याश्का मेज पर से उठा और डगमगाते हुए कदमों से जाने लगा। और फिर अपना सीना दबोच कर औंधे मुँह फर्श पर गिर पड़ा ।

मैं उसे उठा कर डवलरोटी की बेकरी में ले गया जो अपेक्षाकृत अधिक साफ-सुथरी और हवादार थी। वहाँ ले जाकर मैंने उसे आटे के एक पुराने पीपे पर लिटा दिया । उसका चेहरा पीले हाथी दाँत की तरह पीला पड़ गया था। और वह ऐसा निश्चल व निस्पन्द पड़ गया था जैसे मुर्दा । शोर-गुल आहिस्ता-आहिस्ता खत्म हो गया । किसी आने वाली मुसीबत का खतरा मंडराता हुआ-सा नजर आ रहा था। हर शख्स सहम गया था और दबी-दबी आवाज में कुज़िन की निंदा कर रहा था:

"तेरा ही किया-धरा है यह सब। काणे शैतान।"

"बदमाश जेल की हवा खाने के काबिल है।"

बूढ़ा गुस्से में जवाब दे रहा था:

"सब बकवास है। इसे तो कोई दौरा-वौरा पड़ गया है।"

आर्तेम और मैं लड़के को होश में लाये। उसने अपनी चुस्त,मनो-

हर आँखों की लम्बी-लम्बी पलकें आहिस्ता से उठाईं और बेजान आवाज में पूछा:

"क्या हम आन पहुँचे ?"

"अबे आन कहाँ पहुँचे मरदूद।" उसके भाई ने चिंतित हो कहा। "हर जगह अपनी टाँग अड़ाता फिरता है। मैं भी अब तेरी खूब ही ठुकाई करुँगा। गिर क्यों पड़ा था बे ?"

"कहाँ पे ?" उसने आश्चर्य से भवें सुकेड़ते हुए कहा। "मैं क्या गिर पड़ा था ? भूल गया हूँगा।...मैंने एक सपना देखा था। हम एक नाव में थे—तुम और मैं। केकड़े पकड़ रहे थे।...हम खाना भी ले गये थे और एक बोतल वोडका की भी ...।"

कुछ थकावट महसूस करते हुए उसने अपनी आखें बन्द करलीं। फिर थोड़ी देर के बाद मुर्झाई हुई आवाज मे आहिस्ता-आहिस्ता बड़-बड़ाना शुरू कर दिया:

"अब मुझे याद आया। मेरे दिल में इस जोर का दर्द उठा कि मालूम होता था निकल पड़ेगा। कुजिन ने किया है यह। मुझे उससे नफरत है। मेरी थांथ अच्छी तरह नहीं आरही। गधा कहीं का। मैं जानता हूँ उसे—अपनी पत्नी को मार-पीट कर मार डाला था उसने। अपनी बहू पर भी नियत बिगाड़ बैठा था। हम दोनों एक ही गाँव के हैं इसलिए मझे सब मालूम है।"

"अच्छा अब चुप तो रह।" आर्तेम ने डाँट कर कहा। "बस अब सोजा।"

"हमारे गांव का नाम योगिल्देयेवो था। बातें करने से मेरे दर्द होता है वरना मैं–"

वह ऐसे बोल रहा था जैसे कि अब नींद के गोते में आने ही वाला है और बीच-बीच में अपने सूखे, काले होठों को जीभ से तर करता

जाता था।

बेकरी में से कोई दौड़ता हुआ और मारे खुशी के चीखता हुआ आया।

"अरे भाइयो ! मौज उड़ाओ ! मालिक अब फिर नशे में धुत्त है।"

पूरा कारखाना गगनभेदी क़हक़हों और सीटी की तेज आवाजों से गूंज उठा। हर शख्स एक-दूसरे को भलमनसाहत, खुशी और उत्साह भरी दृष्टि से देख रहा था। सुअरों के कारण मालिक के बदले के भय ने आग लगाई हुई थी और अब उसकी मदहोशी के दौरान में कम काम किया जा सकता थ ।

वानुक उलानोव जो लड़ाई–झगड़े के मौकों पर धूर्तता से गायब हो जाता था अब एक छलाँग मार कर बीच कारखाने में आ कूदा और उसने नारा लगाया:

"आओ गाएँ !"

बंजारे ने आँखें बंद करके गला साफ करके बारीक और तेज आवाज में गाना शुरू कर दिया:

एक कच्ची दाढी वाला नौजवाँ है आ रहा
वह रंगीला जोश-मस्ती में अकड़ता झूमता।

बीस आदमियों ने मेज पर ताल दी और गाने में शामिल हो गये।

दाढ़ी देखो उसकी लहराती हुई

बंजारे ने अगली पंक्ति गाई, पाँव से ताल देता रहा और सबने मिलकर बेतुकी पँक्ति को इस प्रकार पूरा किया:

साँप की मानिन्द बलखाती हुई

चिकटे हुए फर्श पर कोई नर्म व नाज़क आकृति वाला ठुमकियाँ और मरोड़ियाँ देकर केंचुलीदार कीड़े की तरह बल खा रहा था और इस तरह धूल के बादल उड़ने लगे थे।

"शाबाश नौजवाना ! डट रहना !" एक जोरदार नारा बुलन्द हुआ और खुशी व शादमानी का यह तूफान अभी हाल के प्रकोप व गुस्से से कुछ कम हेय और दुखद न था।

रात को झुनझुने की हालत और भी खराब हो गई। बुखार तेज हो गया और साँस कुछ उखड़ी उखड़ी सी नजर आई। हिचकियाँ ले-ले कर गंदी और बदबूदार हवा साँस के साथ उसके फेफड़ों में जाती और सिकुड़े हुए होंठों में से फौवारे की तरह निकलती। मानो वह मुँह से सीटी बजाने की कोशिश कर रहा हो। लेकिन पूरी ताकत लगा कर सीटी बजाने का दम उसमें न हो। घड़ी घड़ी वह पानी माँगता लेकिन एक-दो घूंट लेकर ही बस कर देता। और अपनी धुँधली आँखों की मधुर मुस्कान के साथ धीरे से कहता:

"मेरा ही कसूर है ! बस और नहीं पीना चाहता...।"

मैंने उसके बदन पर वोडका और सिरके की मालिश की और वह थोड़ी ही देर में बेखबर सो गया। उसके चेहरे पर आटे की गर्द जमी हुई थी और हल्की-सी मुस्कराहट खेलती हुई नजर आ रही थी। उस के घुंघरियाले बाल कनपटी पर चिपक गये थे और खुद वह ऐसा मालूम होता था कि पिघल कर पानी-पानी हो गया हो। गंदी, फटी-चिथड़ा कमीज आटे में बुरी तरह लिथड़ी हुई थी। इस कमीज के नीचे उसके सीने में सिर्फ हल्की-सी हरकत का संदेह होता था।

सब लोग मुझ पर गुर्राये:

"अच्छा बस अपनी डाक्टरी रहने दो। इस तरह व्यर्थ समय गँवाना हम को भी आता है...।"

मुझे बड़ा ही दुख हुआ। और इस बात का बड़ी तेजी से मुझे एहसास होने लगा कि मैं उन लोगों में बिन बुलाया अजनबी हूँ। सिर्फ आर्तेम और याश्का ही शायद मेरे भावों को समझते थे। बंजारे याश्का ने खुशमिजाजी से कहा:

"हँसी-खुशी रहो! ओ नन्हीं-मुन्नी छोकरी जरा आटा गूंध ले। देख तो तेरे प्रेमी कैसे-कैसे उपहार लिये तेरी प्रतीक्षा में खड़े हैं।"

आर्तेम भी मेरे साथ छेड़खानी करता रहा। उसने बड़ी कोशिश की कि वह मुझ से दिलचस्प मजाक करे लेकिन आज वह भी असफल रहा। और आखिरकार ठण्डी साँस लेकर दुखभरी आवाज में उसने मुझसे दोबारा पूछा:

"क्यों, क्या तुम्हारा ख्याल है कि याश्का को बहुत खतरनाक चोट आई है?"

शातुनोव ने हमेशा से ज्यादा गला फाड़ कर अपना मनोनीत गीत गाना शुरू किया–

जरा झाँकना तंग गलियों के अन्दर
जरा देखना आम रस्तों ,पे जाकर
कि मेरे गम व ऐश हमराह लेकर
कहाँ खो गया आज मेरा मुक़द्दर

रात को मैं भूनभूने के पास ही फर्श पर सोया। अभी मैं बोरियाँ बिछा ही रहा था कि वह उठ बैठा और चौंक कर बोला:

"कौन है यह? क्या तुम हो बड़बड़िये?"

उसने उठकर बैठने की कोशिश की; लेकिन बैठ न सका और फिर लेट गया। उसका सिर स्याह चीथड़ों के तकिये पर बेजान होकर गिर पड़ा।

सब सो रहे थे। गहरे साँस लेने की सरसराहट हो रही थी और

बलगम की खाँसी घुटी हुई बदबूदार हवा में थरथराहट पैदा कर रही थी। खिड़की के मैले और धुँधले शीशों मे से गहरी नीली रात के तारे सर्द आँखों से घूर रहे थे। तारे इतने छोटे और इतने दूर दिखाई दे रहे थे कि दिल पर उदासी छाई जाती थी। बेकरी के एक कोने में दीवार पर लगी हुई तेल की डिबिया जल रही थी। और उसकी मद्-धम रोशनी में ताक़ में रखे हुए रोटी के साँचें धुँधले-धूंधले दिखाई दे रहे थे डबलरोटियों से गंजी खोपड़ियों का शक होता था। आटे के एक बड़े तसले पर गूंगा निकान्दर सिकुड़ा-सिकुड़ाया गेंद बना पड़ा था और नानबाई की पीली नंगी टाँग जिस पर कई घाव थे इस मेज के नीचे से झाँक रही थी जिस पर डबलरोटियाँ तोली और बण्डलों में बाँधी जाती थीं।

याश्का ने आहिस्ता से आवाज दी:

"बडबड़िए...।"

"क्या ?"

"मुझे बड़ी तकलीफ हो रही है...।"

"अच्छा आओ हम बातें करें। मुझे कोई किस्सा सुनाओ...।"

'क्या कित्था थुनाऊँ ? किथी देव ता कित्था थुनाऊँ ?"

"चलो देव का ही सही...।"

थोड़ी देर तक वह खामोश रहा। फिर डिब्बे पर से कूद कर नीचे लेट गया। झुलसता हुआ सिर मेरे सीने पर रख लिया और आहिस्ता-आहिस्ता तल्लीनता की स्थिति में कहना शुरू किया:

"मेरे पिता के जेल जाने थे पहले की बात है। गर्मियों का मौसम था और मैं बिल्कुल छोटा-था था। मैं बाहर थो रहा था थूथे की गाड़ी में। बड़ा मजा आ रहा था। एकदम मेरी आँख खुल गई। दरवाजे के थामने वह कूद रहा था—बहुत छोटा-था था मुट्ठी थे भी बड़ा नहीं

था। दत्थाने की तरह उथ पर बाल ही बाल थे। भूरे और हरे। आँखें भी उथके नहीं थी। मैं चिल्लाने लगा। माँ ने मुझे जगा दिया। मुझे चिल्लाना नहीं चाहिए था, उथको डराना नहीं चाहिए नहीं तो वह नाराज हो जाता है और फिर चला जाता है और लौट कर नहीं आता यह बड़ी बुरी बात है। जिथ घर में देव न हीं होता उथ घर में भगवान की दया नहीं उतरती। तुम्हें मालूम है देव कौन होत हैं ?"

"नहीं ! कौन होत हैं ?"

"वे देवताओं के द्वारा भगवान को थूचना भजते हैं। देवता आथमान से उतरते हैं और थुना है कि वे हम लोगों की जबान नहीं थमझत, नहीं तो वे अपवित्र हो जात हैं। और आदमियों को भी देवताओं की बात नहीं थुननी चाहिए...।"

"क्यों नहीं सुननी चाहिए ?"

"इथलिए नहीं थुननी चाहिए कि मेरे ख्याल में तो यह शर्म की बात है। देखते नहीं इथ जबान न लोगों को भगवान की ओर से कितना विमुख कर दिया है ?"

उसे जोश आ गया और वह उठकर बैठ गया। औरवह जल्दी-जल्दी बोलने लगा बिल्कुल उसी तरह जिस तरह तन्दुरुस्ती की हालत में बोला करता था।

"हर आदमी परमात्मा थे थीधा जाकर कह देता है कि उथे क्या चाहिए लेकिन नहीं बीच में देव है– तभी वह लोगों थ नाराज हो शायद लोग उथे खश नहीं करते और वह देवताओं थ झूठी बातें कह देगा। थमझे कुछ ? अब वे उससे पूछत हैं यह किथान कैथा है ? और वह चूंकि नाराज होता है इथलिए कहता है वह तो खराब आदमी है और फिर मैं तुमथे शर्त लगाता हूँ कि उथ आदमी के घर में मथीबतों का पहाड़ टूट पड़ेगा। लोग चीखते हैं चिल्लाते हैं–हे परमात्मा हम पर

दया कर—और लोगों को मालूम नहीं होता कि उनकी शिकायत कर दी गई है। वह उनकी बात नहीं थुनता और वह भी उनथे नाराज हो जाता है..."

लड़के के चेहर पर दुःख के बादल छा गये थ और वह गम्भीर हो गया था। उसन अपनी आँखें घुमाईं और छत को घूरने लगा जो जाड़ों के आकाश की तरह सफेद थी ! और गीले धब्ब बादलों जैसे दिखाई दे रहे थे।

"तुम्हारे पिता की मृत्यु कैसे हुई ?"

"वह अपनी ताकत की बड़ी डींगें हांका करते थ। यह उथ जमाने की बात है जब वह जेल में थे। उन्होंते कहा कि मैं पाँच आदमियों को हरा थकता हूँ। उनथे कहा कि वे एक दूथरे की कमर में हाथ डाल लें और फिर उन्होंने उन्हें उठाना शुरू किया और उनका दिल फट पड़ा। खून निकलता रहा और वह मर गये।

झुनझुने ने एक ठण्डी साँस भरी और दोबारा मेरे पास लेट गया। उसने अपने तमतमाते हुए कल्ले मेरे हाथों पर रगड़े और अपना किस्सा फिर शुरू कर दिया।

"वह बड़े पहलवान थे। मन भर का वजन उठा कर वह बगैर दम लिए बारह बार अपने ऊपर क्रास का निशान बना लेते थे। मार उन्हें काम ही नहीं मिलता था और जमीन भी बड़ी थोड़ी थी, बहुत ही थोड़ी—मालूम नहीं कितनी थी। पेट भरने को कुछ भी नहीं था, बिल्कुल कुछ भी नहीं। भीख माँगो जाकर और बथ। मैं छोटा था, लेकिन मुझे भी ततारियों थे भीख माँगन जाना पड़ता था। हमारे गाँव में सब तातारी हैं, पर हैं, अच्छे तातारी। एथ जो हमेशा कहते हैं, लो भई ! ये ले जाओ। वे थब एथ ही हैं। अच्छा तो हमारे पिता जी ने घोड़े चुराना शुरू कर दिये। उन्हें हम पर बड़ा तरस आता था।"

उसकी बारीक आवाज मर्रा गई थी और धीरे-धीरे थकी-सी होती जा रही थी। लड़का बूढ़े आदमी की नाईं खाँसकर और ठण्डी साँस भरके बोला:

"जब वह घोड़ा चुरा लाते तो फिर थब ठीक हो जाता। हमारे पाथ खाने को होता और हम थब बहुत खुश होते। माँ तो रो-रोकर आँथें थुजा लेती थीं...लेकिन ऐथे मौकों पर वह भी शराब पीतीं और गीत गातीं। बड़ी अच्छी थी, थब को प्यार करती थी...पिताजी के मरने पर रो-रोकर कहती थी, 'हाय मेरे प्यारे, मेरी आत्मा!' गाँव वाले मेरे पिताजी को लाठियों से मारा करते थे। लेकिन वह किसी की परवाह नहीं करते थे। आर्तेम को फौज में भरती होना था। हम थोचते थे कि वह बूढ़ी औरत मालूम होता था। तँदूर के कोने के पीछे एक हाथ में वोदका की बोतल और दूसरे में आंजूरा लिये वह कुछ चोरों की तरह छिपा खड़ा था। उसके हाथ कँपकँपाते मालूम हो रहे थे—। शीशे टकराने और कलकल की आवाज़ आ रही थी जैसे कोई शराब निकाल रहा हो।

"यहाँ आओ!" उसने मुझे आवाज़ दी और जब मैं क़रीव पहुँच गया तो एक झटके के साथ शराब का ग्लास बढ़ाया और कुछ छलका भी दी। "लो पियो!"

"मैं तो नहीं पीना चाहता!"

"नहीं क्यों?"

"यह कोई वक्त नहीं है।"

"अगर कोई शराब पीता है तो पीने के लिये हर वक्त ठीक है। पियो!"

"मैं शराब पीता नहीं!"

उसने अपना भारी सिर हिलाया।

"मुझसे तो किसी ने कहा था कि तुम पीते हो!"

'एकाध ग्लास वह भी उस समय जबकि मैं थक जाता हूँ ।"

उसने दाहिनी आँख से ग्लास को घूरा और एक गहरी ठण्डी साँस भर कर वोडका तँदूर के मुँह में फेंक दी । फिर वह तँदूर पर चढ़ गया और उसके मुँह में पाँव लटका कर बैठ गया ।

"बैठ जाओ । मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ ।"

अँधेरे में मुझे उसका थाली-सा चेहरा तो नज़र नहीं आ रहा था लेकिन आवाज़ सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । इसलिए कि वह कुछ विलक्षण रूप से अनजानी-सी प्रतीत हो रही थी । मैं उसके समीप बैठ गया । उसमें मुझे बड़ा आनन्द आ रहा था । अपना सिर झुकाए वह ग्लास पर अपनी उँगलियाँ बजा रहा था और हल्की-सी टनटन की आवाज़ आ रही थी ।

"हूँ, तो कुछ सुनाओ...।"

"याश्का को अस्पताल पहुँचाना बहुत जरूरी है...।"

"क्यों, क्या बात है ?"

"बीमार है न वह ! कुज़िन ने उसे बुरी तरह पीटा है ।"

"कुज़िन बड़ा नीच है, बदमाश है । तुम लोगों की चुग़लियाँ खाता है । क्या तुम सोचते हो कि मैं इस कारण उसके साथ कोई पक्षपात करता हूँ ? उसको कोई इनाम देता हूँ ? उसके मूर्खों के-से थोबड़े पर तो मैं मुट्ठी भर धूल भी न फेंकूँ । पैसे देने की तो अलग रही ।"

वह मरी हुई आवाज़ में बोल रहा था लेकिन बातें साफ सुनाई दे रही थीं और हालाँकि उसका एक-एक शब्द वोडका में बसा हुआ था लेकिन वह नशे में धुत्त नहीं था ।

"मुझे सब कुछ मालूम है । तुम सुअरों को मार डालना क्यों नहीं चाहते थे ? सच बताना मैंने तुम्हारे साथ ज्यादती की है है ना ? और मेरे साथ तुमने भी अन्याय किया है, क्यों ?"

मैंने सब कुछ बता दिया ।

"हाँ।" उसने कुछ रुक कर कहा, "तो मैं सुअर से भी बदतर हूँ, क्यों ? मुझे भी जहर दे देना चाहिये, है ना ?"

उसकी आवाज़ ऐसे आई जैसे कि वह मुस्करा रहा हो। और मैंने दुबारा कहा:

"तो फिर क्या मैं याश्का को अस्पताल ले जाऊँ ?"

"तुम चाहे उसे बूचड़खाने में लेजाओ, मेरी बला से। मुझसे उसका वास्ता क्या ?"

"तुम्हारे खर्चे पर ?"

"हरगिज़ नहीं।" उसने लापरवाही से कहा। "ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। फिर तो सभी अस्पताल मे जाकर पड़ रहना चाहेग...। मै कहता हूँ तुमने मेरे कान क्यों अमेठे थे उस दिन ?"

"मुझे क्रोध आ गया था।"

"यह तो मैं भी समझता हूँ। लेकिन मेरे सवाल का मतलब यह नहीं था। अर तुमन मेरे कान पर मुक्का मार दिया होता या गल पर घूसा, पर तुमने मेरे कान क्यो खीचे ? क्या मै बच्चा हूँ ?"

"मैं लोगों को मारना पसन्द नही करता...।"

बड़ी देर तक वह शान्त बैठा रहा। उस समय ऐसा मालूम होता था जैसे कि नीद का एक झोंका आ गया हो। फिर उसने दृढ़ता से और स्पष्ट स्वर में कहा :

"तुम भी अजीब आदमी हो ! बाक़ी सब नौकरों की-सी कोई भी बात तुम में नही है। तुम्हारी खोपड़ी भी किसी और ही ढग की है।"

उसने यह बात मुझे भड़काने के लिए नही कही लेकिन उससे उस की खिन्नता अवश्य प्रकट होती थी।

"अच्छा अब बताओ कि क्या मैं वास्तव मे बुरा आदमी हूँ ?"

"और आप क्या समझ रहे थे ?"

"मैं ? तुम झूठे हो, मैं अच्छा आदमी हूँ। अरे भाई मेरे मैं बहुत चालाक आदमी हूँ। अच्छा देखो, तुम पढ़े-लिखे हो, बातें करने की तुम्हें ईश्वरदत्त प्रतिभा है। कोई बात हो तुम बराबर बोले जाओगे। तारों की बात हो, चाहे फ्रांसीसियों की, या भद्रलोक की—मैं मानता हूं यह सब बड़ी अच्छी, दिलचस्प और मजेदार बातें हैं। मैने तुम्हें एक ही नज़र में भाँप लिया था ! याद है उस दिन जब तुम मुझसे पहली बार मिले थे और कहा था कि मुझे सर्दी लग जायगी और मैं मर जाऊँगा...। आदमी का मूल्य मैं बड़ी जल्दी ताड़ लिया करता हूँ !"

उसने भद्दी और मोटी उँगलियों से अपना माथा ठोका, एक ठण्डी साँस भरी और समझाने लगा:

"अरे मेरे भाई मेरी स्मरण शक्ति बड़ी तेज है...। अरे भाई मुझे तो यहाँ तक याद है कि मेरे दादा की दाढी में कितने बाल थे। शर्त लगा लो चाहे, क्यों ?"

"शर्त काहे की ?"

"इस बात की कि मैं तुमसे ज्यादा चुस्त व चालाक हूं। ज़रा सोचो तो मै अनपढ़ आदमी हूँ, मुझे क ख भी नहीं आता सिर्फ गिनती जानता हूँ। लेकिन फिर भी मैं इतना बड़ा कारोबार संभाले बैठा हूँ। तेंतालीस आदमी नौकर हैं, एक दूकान के और तीन है शाखाएँ। तुम एक पढ़े-लिखे आदमी मेरे यहाँ नौकर हो। अगर मै चाहूँ तो सचमुच एक अच्छे-खासे विद्यार्थी को नौकर रख कर तुम्हें लात मार कर निकाल बाहर कर सकता हूँ। मै अगर चाहूँ तो हरेक को लात मार कर निकाल कर शराब पर अपना सारा धन लुटा सकता हूँ। क्यों ठीक कहता हूँ ना मैं ?"

"मेरी तो समझ में आता नहीं, इसके लिए दिमाग़ की क्या ज़रुरत है ?"

"सब बकवास ! दिमाग़ क्या चीज़ होती है ? अगर मेरे पास नहीं

है तो फिर किसी के पास भी नहीं है। तुम समझते हो कि दिमाग़ वाला होने के लिए बातूनी होना ज़रूरी है। नहीं मियाँ यह तो कारोबार की बात है। यहीं आपको मिलेगा दिमाग़।"

उसने एक हल्का-सा लेकिन विजयपूर्ण क़हक़हा लगाया जिसके साथ उसके बोझिल शरीर का लटकता हुआ मांस थलथल फुदकने लगा। फिर उसने मैत्रीपूर्ण ढंग से और भारी स्वर में बात जारी रखते हुए कहा:

'तुम एक आदमी का भी पेट नहीं पाल सकते थे और मैं चालीस को खिला रहा हूँ। अगर चाहूँ तो सौ को खिला सकता हूं। दिमाग़ की बातें करने चले हो।"

जैसे-जैसे वह बोलता गया उसका स्वर कठोर और उपदेशात्मक होता गया और ज़बान लड़खड़ाने लगी।

"मुझे क्या पाठ पढ़ाने चले हो तुम ? सब बकवास है ! बहरहाल उससे फायदा ही क्या ? न ही कुछ तुम्हारा भला होता है। खूब कोशिश करो ताकि मैं भी तुम्हें इसका मज़ा चखा सकूँ।..."

"चखा तो चुके हो।"

"अच्छा, वास्तव में ?"

उस पर उसने क्षण दो क्षण ग़ौर किया और मेरा कन्धा थपथपाते हुये इक़रार किया:

"हाँ ठीक है। बस अब ज़रूरत इस बात की है कि मैं तुम्हें एक मौक़ा दूं।...हालाँकि मैं सब कुछ देखता हूँ। सब कुछ जानता हूं... यह मेरा गारास्का चोर है लेकिन यह भी है बड़ा चालाक और यदि पकड़ा न जाय और जेल न चला जाय तो वह भी मालिक बन सकता है। अपने नौकरों की खाल खिंचवाकर भुस भरवा देगा वह। यहाँ सबके सब चोर हैं जानवर से भी बदतर। पक्के बदमाश ! और तुम उनके साथ भलाई करने की कोशिश कर रहे हो। मेरी तो कुछ समझ

मे नहीं आता यह तुम्हारी घोर मूर्खता है।"

नींद मुझ पर सवार हो चुकी थी। दिन भर की मेहनत से मेरा जिस्म थककर चूर हो गया था और थकावट से सिर चकरा रहा था।

आक़ा की उकता देने वाली चपचपी आवाज विचारों को चिपकाये दे रही थी:

"मालिकों के बारे में तुम बडी भयानक बातें कहते हो। यह सब तुम्हारी मूर्खता है, तुम्हारी तरुणाई ही इसका कारण है। मेरी जगह यदि कोई और व्यक्ति होता तो फौरन पुलिस वाले को बुलाता, एक रुबल उसके हाथ में थमाता और तुम्हें सीधा थाने भिजवा देता।"

उसने अपना भारी और नर्म हाथ मेरे घुटने पर मारा:

"चालाक आदमी को मालिक बनने की फिक्र करनी चाहिये। इधर-उधर टक्करें मारने से क्या लाभ ? लोग तो इतने असल्य हैं जैसे मेंढक। मालिक बहुत थोड़े है। यही मुश्किल है।...यह सब असमान और ग़लत है अगर तुम आँख खोलकर देखो तो तुम्हें बहुत कुछ नज़र आयगा। फिर तुम्हारा दिल मज़बूत हो जायगा और तुम समझ जाओगे कि खुद ये लोग ही खराब हैं यानी वे लोग जो नौकरी करते है। तमाम फालतू आदमियों को काम पर लगाना चाहिये ताकि वे बेकार मारे-मारे न फिरें। एक पेड़ को बेकार पड़ा सड़ते रहने देना लज्जास्पद है, उसको जला डालो गर्मी तो देगा। यही बात इन्सान के साथ है, समझे कि नहीं।"

याश्का के कराहने की आवाज़ आई और मै उसे देखने के लिए उठ खड़ा हुआ। वह चित्त लेटा हुआ था—भवें तनी हुई और मुँह खुला हुआ था। दोनों हाथ सीधे और जिस्म के साथ चिपके हुए थे। उस लड़के में कुछ फौजियों जैसी चुस्ती पाई जाती थी।

निकान्दर आटे के कढ़ाव पर से नीचे कूदा और तँदूर की ओर लपका ही था कि रास्ते में मालिक से टकरा गया और कोई एक मिनट

तक हक्का-बक्का खड़ा रहा। फिर बड़ा-सा मुँह फाड़कर अपनी मछलियों जैसी आँखें अपराधी की नाईं झपकाईं और अपनी फुर्तीली उँगलियों से हवा में कुछ पेचीदा आकृतियाँ बनाते हुए मुनमुनाया:

"मू—ऊ—ऊ—ऊ !"

आक़ा ने उसे चिढ़ाया और यह कहते हुए उठकर चला गया, "गूँगा पत्थर !..."

जब वह दरवाज़े के पीछे ग़ायब हो गया तो बहरे गूगे ने मेरी तरफ देख कर आँख मारी और अपना हलक़ दो उँगलियों से दबा कर संकेत किया, "कोख–कोख।..."

अगले दिन सुबह याश्का और मैं अस्पताल गये। हमारे पास सवारी के लिए पैसे नहीं थे और लड़का बड़ी कठिनाई से चल रहा था। क्षीण स्वर में खाँस-खाँस कर बातें करते हुए वह अपनी तीव्र वेदना का मर्द की भाँति सामना कर रहा था।

"थाँथ ही नहीं ली जाती। फेफड़े बेकार हो गये हैं...बदमाश।..."

बाजार में चिलचिलाती हुई, चाँदी की तरह चमकती हुई धूप में और गर्म कपड़ों में अच्छी तरह लिपटे-लिपटाये राहगीरों के दरम्यान वे अपने काले चीथड़े पहने असलियत से ज्यादा छोटा और सूखा नजर आ रहा था। उसकी आस्मानी नीली आँखें कारखाने के अँधेरे की आदी थीं और इसलिए उनमें पानी डबडबा आया था।

"और मैं मर गया तो आर्तेम तो कुत्ते की मौत मरेगा, शराब बुरी तरह पीने लगेगा। उल्लू ! और अपनी तो वह ज़रा भी देखभाल

नहीं करता। बड़बड़िये, तुम उथकी डाँट–डपट करते रहना, कहना मैंने कह दिया था।"

उसके सूखे, काले, छोटे-छोटे-से होंठ बेचैनी के दर्द के कारण भिच गये।

उसकी बच्चों जैसी ठोढ़ी थरथराई। मैं उसको बग़ल में दबोचे हुए था और मुझे डर था कि कहीं वह रोना न शुरू करदे और मैं राहगीरों को मारना और खिड़कियों के शीशे न तोड़ना शुरू करदूँ और फिर अच्छा-खासा तमाशा बन जाये।

'झुनझुना' रुक गया। एक लम्बी–सी साँस ली और बडे-बूढ़ों की तरह रोबदार आवाज में बोला:

"बस उससे इतना ही कह देना कि मैंने उसे हुक्म दिया है कि वह तुम्हारा हुक्म माने...!"

कारखाने में वापस आ कर मुझे एक और दुर्घटना का पता चला। सुबह जब निकान्दर बिस्किट लेकर दूसरी दूकान में देने को ले जारहा था तो वह फायर ब्रिगेड के घोड़ों की सीमा में आ गया और वह भी अस्पताल पहुँच गया।

"अब, शातुनोव ने अपनी छोटी-छोटी चुंधी आँखों से मुझे देखते हुए बड़े विश्वास के साथ कहा, तुम देख लेना कोई-न-कोई मुसीबत आयेगी। जब कोई दुर्घटना घटती है तो उसके बाद दो और आवश्यक होती हैं—हमेशा तीन हुआ करते हैं। हज़रत ईसा से लेकर सेंट निकोलस और सेण्ट जार्ज तक। फिर पुनीत माता उनसे कहेंगी: 'बस काफी है बच्चो!' और फिर वे सत्पथ पर आ जायेंगे...।"

निकान्दर का कोई ज़िक्र न हुआ। वह उनके लिए अजनबी था हमारे कारखाने का आदमी न था। लेकिन फायर ब्रिगेड के घोड़ों की रफ्तार, ताक़त और सहिष्णुता के बारे में बड़ी-बड़ी बातें होती रहीं।

अभी हम खाना खा ही रहे थे कि गारास्का आया। वह एक चुस्त

व चालाक, खूबसूरत लड़का था। आँखें उसकी व्यभिचारियों और चोरों जैसी निडर थीं मानो कह रही हों–डरता कौन है–उसने बड़ी गम्भीरता से घोषणा की कि मुझे निकान्दर की जगह देकर छोटा नानबाई बनाया गया है और मेरी तनख्वाह छः रूबल मासिक हो गई।

"बधाई!" याश्का खुशी से उछल पड़ा। फिर फौरन ही भवें सुकेड़ कर पूछा:

"यह है किसकी आज्ञा ?"

"मालिक की !"

"लेकिन वह तो नशे में धुत्त है ना !"

"बिल्कुल भी नहीं !" गारास्का ने चहक कर कहा। "मरने वालों की स्मृति में कल ज़रूर एक दौर चला था। लेकिन आज होश व हवास बिल्कुल दुरुस्त है बल्कि इससे भी ज्यादा और आज आटा खरीदने गया है...।"

"तो अभी सुअरों वाला मामला खतम नहीं हुआ ?" बंजारे ने दबी आवाज़ में झुँझला कर कहा।

सब लोग मुझे मुँह फुलाये देख रहे थे और जलन के मारे बुरे-बुरे ताने दे रहे थे। कठोर तथा असह्य अपशब्दों से कारखाना गूँज रहा था।

"हाथ मार रहा है खूब...।"

"निराला पंछी सदा निराला होता है...।"

शातुनोव अपनी विशिष्ट भाषा में चबाचबा कर कह रहा था:

"काँटों का अपनी जगह होती है, फूलों की अपनी !"

और कुज़िन ने अपने विचार उन्हीं शब्दों में छिपाये जिन्हें वह अपनी दुर्भावनायें छिपाने के लिये सदैव इस्तेमाल करता था।

"अरे शैतानो ! कितनी बार तुमसे कहूँ कि मूर्ति को ज़रा साफ कर दिया करो !"

केवल आर्तेम ने बुलन्द आवाज़ में कहा:

"हो गई शुरू—वही काट-छाँट, बोलियाँ, ठिठोलियाँ !"

डबलरोटी की बेकरी में काम करने के बाद पहली ही रात को जब मैं एक बारी का आटा गूँध कर और दूसरी बार का भिगोकर किताब लिये हुए चिराग़ के पास बैठा था कि आक़ा आ गया। नीद के मारे आँखें बोझिल थीं और वह उन्हें जल्दी-जल्दी झपका कर अपने होंट झपकाये जा रहा था ।

"पढ़ रहे हो, यह बड़ी अच्छी बात है। पड़ कर सो रहने से बेहतर है। ज्यादा देर तक आटा पड़े रहने का खतरा ही नहीं।"

बातें वह धीरे-धीरे कर रहा था। फिर बड़ी सावधानी से मेज़ के नीचे नज़र दौड़ा कर जहाँ नानबाई पड़ा खर्राटे ले रहा था वह मेरे करीब, आटे के एक बोरे पर बैठ गया। किताब मेरे हाथ से लेकर बन्द कर दी और अपने मोटे-से घुटने पर रख कर उस पर अपनी हथेली जमा दी।

"क्या किताब है यह ?"

'रूसी जनता के बारे में है।"

"कौन-सी जनता ?"

"रूसी जनता कहा ना !"

उसने कनअखियों से मुझे देखा और समझाते हुए बोला :

"हम काज़ान के लोग भी रूसी हैं—तातारियों के अलावा–सिबर्स्क के लोग भी रूसी हैं। किसके सम्बन्ध में लिखा है इसमें ?"

"इसमें हरेक के बारे में लिखा है..."

उसने पुस्तक खोली। पुस्तक वाले हाथ को फैलाकर पुस्तक को जाँचते हुए सिर हिलाया और अपनी मँजरी आँख से पृष्ठों को आँका और निर्णय सुना दिया:

"पता चल गया, तुम इस किताब को समझ ही नहीं सकते।"

'यह कैसे जान गये तुम ?"

'बात बिल्कुल साफ है, चित्र कहाँ हैं ? एक भी तो नहीं है। तुम्हें तो ऐसी किताबें पढ़नी चाहियें जिनमें तस्वीरें हों। शतिया कहता हूँ उसमें ज्यादा मज़ा आता है। जनता के बारे में क्या कहती है यह किताब ?"

"इसमें उनकी श्रद्धा, उनके रस्म व रिवाज और उनके गीतों के बारे में बातें लिखी हैं।" मालिक ने किताब बन्द कर दी और अपनी टाँग के नीचे सरका दी। और एक लम्बी-सी जम्हाई ली। उसका मुँह यद्यपि भाड़-सा खुला हुआ था लेकिन उसने उस पर क्रॉस का चिन्ह* न बनाया।

"ये तो आम बातें हैं जो सब जानते हैं।" उसने कहा। "लोग भगवान पर आस्था रखते हैं। उनके यहाँ अच्छे गाने भी हैं और बुरे गाने भी। और उनके रीति-रिवाज सब सड़े-पड़े। उन सबके बारे में तुम मुझ से पूछ लो। रीति-रिवाज तो मैं तुम्हें इतनी अच्छी तरह समझा दूँ कि क्या कोई किताब बतायेगी। उनके बारे में किताबें पढ़ कर तुम्हें जानने की ज़रूरत नहीं। सड़क पर निकल जाओ, बाज़ार में चले जाओ, शराबखाने मे जा बैठो या त्योहार के दिन गाँव चले जाओ। वहाँ तुम्हें सब रिवाजों का पता चल जायगा। या जी चाहे तो किसी अदालत में चले जाओ। छोटे-मोटे अपराधों की अदालत में भी...।"

"तुम तो बुरी बातों का ज़िक्र कर रहे हो।"

उसने घूर कर गुस्से से मुझे देखा और कहा:

"हाँ, हाँ मुझे मालूम है मैं क्या कह रहा हूँ। रह गईं ये किताबें तो य सब मनगढ़न्त किस्से-कहानियाँ हैं, बिल्कुल मूर्खतापूर्ण ! तुम

क्या मुझे यह समझा रहे हो कि एक किताब में पूरी कौम का हाल लिखा जा सकता है ।"

"एक से ज्यादा किताबें हैं ।"

"तो क्या हुआ, कौमें और जातियाँ भी तो हजारों-लाखों हैं । इन में से हरेक के बारे में एक-एक किताब तो लिखने मे रहा कोई !"

उसके स्वर में तुर्शी थी और उसकी आँखों के ऊपर के पीले रोएं गुस्से के मारे खड़े हो गये । यह बातचीत मुझे भयानक सपना-सा मालूम हो रही थी और मैं उससे उक्ता गया था ।

"तुम भी अजीब आदमी हो, बिल्कुल औंधी खोपड़ी के ।" उसने एक लम्बी-सी साँस लेकर खरखराते हुए कहा, "तुम्हारी समझ में नहीं आता कि यह सब व्यर्थ की बकवास है । किताबें किसके बारे में है ? लोगों के बारे में । लेकिन कौन लोग हैं जो अपने सम्बन्ध में सच-सच बातें बता देंगे ? तुम बता दोगे ? मैं तो हरगिज़ न बताऊँ । अगर तुम मेरी जिन्दा खाल उधड़वादो तब भी न बताऊँ । मैं तो शायद भगवान के सामने भी कुछ न बोलूँ । वह कहेगा—हाँ तो वासिली अपने पापों की सूची तो पेश करो !—और मैं जवाब दूँगा—हे परमपिता परमेश्वर वह तो तू मुझसे अधिक जानता है । यह आत्मा तो तेरी ही है मेरी नहीं ।"

उसने मुझे कुहनी मारी और हँसकर आँख मारते हुए पहले से नीची आवाज़ में कहता गया:

"हाँ, मैं तो यह भी कह सकता हूँ—किसकी है यह आत्मा ? उसकी है । उसने मुझसे लेली, और बस अब उसका जिक्र क्या !"

उसने एक हाथ की और दोनों हाथ मुँह पर इस प्रकार फेरे जैसे मुँह धो रहा हो फिर उसी उत्साह व उमंग से अपनी बातें जारी रखीं:

"बोलो, क्या उसी ने नहीं दी थी मुझे आत्मा ? निश्चय ही उसने दी है । और बाद में क्या उसी ने फिर वापस नहीं लेली ? निश्चय ही

उसीने ली। बस तो फिर हिसाब बेबाक़ और हम बरी।"

मेरा सर चकराने लगा। लैम्प हमारी पुश्त पर और हमसे ऊपर दीवार पर लटका हुआ था और हमारी परछाइयाँ सामने हमारे क़दमों पर पड़ रही थी। कभी-कभी आक़ा अपने सिर को झटका देता और ज़र्द रोशनी उसके चेहरे पर चमकने लगती। नाक दिखाई देती जिसे विभिन्न परछाइयों ने असलियत से ज्यादा लम्बा कर दिया था। और आँखों के नीचे स्याह हल्क़े नज़र आते और उसके मोटे चेहरे के उतराव-चढाव भयानक मालूम होने लगते। हमारे दाहिनी ओर दीवार में एक खिड़की थी जो हमारे सिरों के बराबर ऊँचाई पर थी। खिड़की के धूल-धूसरित शीशों में से मुझे नीले आकाश और मटर के छोटे-छोटे दानों की तरह ज़र्द सितारों के एक झुमके के अलावा और कुछ नजर नहीं आरहा था। आलसी, सुस्त नानबाई खर्राटे लेरहा था झींगर झन-झना रहे थे और चूहे कहीं कोई चीज खुरच रहे थे।

"लेकिन क्या तुम्हें भगवान पर विश्वास नहीं है ?" मैंने अपने मालिक से पूछा। उसने अपनी मुर्दा आँख तिरछी करके मुझे देखा और काफी देर तक कुछ जवाब न दिया।

"यह तुम मुझसे नहीं पूछ सकते ! तुम्हें मजाल नहीं है कि अपने काम की बात के अलावा और कुछ बात मुझसे पूछो। जो कुछ मेरा दिल चाहेगा मैं तुमसे पूछूँगा। और तुम्हें जवाब देना पड़ेगा आखिर तुम चाहते क्या हो ?"

"यह मेरा अपना मामला है।"

वह सोच में पड़ गया और मुँह भींचे नाक से धीरे-धीरे साँस लेता रहा।

"यह क्या जवाब हुआ ? बदतमीज़। शैतान !..."

उसने अपने नीचे से किताब निकाली और अपने घुटनों पर थपथपा कर फर्श पर फेक दी।

"कहानी ! कौन जान सकता है मेरी कहानी। और तुम्हारी—तुम्हारी कोई कहानी ही नहीं है और न होगी कभी।"

वह एकदम हँस पड़ा—एक बेपरवाह हँसी। इस अजीब सुबकी-की-सी हल्की और मरी हुई आवाज से। मेरे दिल में मुर्झाहट और मालिक के लिए सहानुभूति का भाव पैदा होता था। और वह अपने बेडौल जिस्म को लिए झूम-झूम कर व्यगपूर्ण और तीखे स्वर में कहता रहा:

"मैं यह सब कुछ जानता हूँ। तुम जैसे मैंने बहुतेरे देखे हैं। मेरी एक रखेल है जो मेरी एक दूकान में सौदा बेचती है। उसका एक भतीजा है जो ढोरों की डाक्टरी पढ़ता है; घोड़ों और गायों का इलाज करना सीख रहा है। अब वह पक्का शराबी है और शराबी बनाया है मैंने। गालिकन है उसका नाम, कभी-कभी आता है मेरे पास शराब के लिए दस कोपेक लेने। बिल्कुल फक्कड़ है। उसने यह जानने की कोशिश की थी कि दुनिया के कारोबार कैसे चलते हैं, वह भी बकवास किया करता था। लोगों में कहीं-न-कहीं सच्चाई जरूर होगी। मेरे दिल की गहराइयों में यथार्थ की खोज की धुन समाई हुई है तो फिर दिल की उन गहराइयों के बाहर भी कहीं सच्चाई मौजूद है। और मैं उसे शराब पिला-पिला कर नशे में धुत्त करता रहा। कम्बख्त पक्का शराबी बन गया; दीदे निकाल-निकाल कर मुझे घूरा करता। आँखें उसकी कोमल रमणी की-सी थीं पर मैं यह नहीं कहूँगा कि उनमें मक्कारी थी, वह अपने आपे ही में न रहता था। कहा करता: 'वासिली सेम्योनोव तुम कुहरा हो। जिन्दगी में तुम एक भगानक मनुष्य हो...।'

तँदूर गर्म करने का समय हो गया था। मैं उठ खड़ा हुआ और मैंने मालिक को यह बात बताई तो वह भी खड़ा हो गया। नाँद खोल कर आटे को थपका और बोला: "अच्छा तो यह बात है।..."

वह टहलता हुआ मेरी ओर देखे बिना ही वहाँ से चला गया।

मैंने सन्तोष की साँस ली कि उसको चिकनी-चुपड़ी और शेखी

भरी आवाज रुक गई थी और बेहूदा बातचीत का तूमार बेकरी से बाहर चला गया था।

बिस्किटों की बेकरी में नँगे पाँव चलने की आहट हुई और गुप्प अँधेरे में आर्तेम मुझसे टकरा गया। उसके बाल बिखरे हुए और उदास आँखें फटी-फटी-सी थीं जैसे कोई नींद में चलने के रोग का शिकार हो।

"अच्छा तो इस प्रकार तुम्हें काबू में किया जा रहा है।'

"हाय, तुम सोए नहीं ?"

"मालूम नहीं, दिल में कुछ दर्द-सा हो रहा है। ही ही... तो इस तरह वह।..."

"उसकी भी बड़ी मुश्किल है।"

"हाँ, शायद ! बेकार आदमी है और सौदेबाजी में नीचता करता है।..."

अब लड़के ने तँदूर के सहारे खड़े होते हुए परिवर्तित स्वर में जैसे योंही सरसरी तौर से कहा:

"मेरे भाई बेचारे को इन लोगों ने अधमुँआ कर डाला है। क्या ख्याल है तुम्हारा ? जिन्दा निकल आयगा वह अस्पताल से ?"

"क्या बात कही ? हे भगवान दया कर !..."

वह एक झटके के साथ तँदूर से अलग होकर खड़ा हुआ और उदास स्वर में यह कहता हुआ बिस्किट की बेकरी में चला गया।

"भगवान से हमें कुछ नहीं मिलेगा।..."

मालिक से रात की ये बातें एक निरन्तर और भयानक सपने की तरह जारी रहीं। हर रात पिछले पहर जब मुर्गे अज़ान दे रहे होते तो

जहन्नुम में शैतान उछल-कूद करते होते। और मै आग सुलगाने के बाद किताब हाथ मे लिये पढ़न को बैठता होता तो वह बेकरी मे कही से आ टपकता।

गोल-मटोल और आलसी की नाईं वह अपने कमरे से लुढ़कता हुआ निकलता और एक हाथ के साथ तदूर के किनारे पर बैठ जाता। और तंदूर के अन्दर उसकी टाँगे इस तरह लटक रही होती जैसे कि कब्र मे। अपना छोटा-सा पजा फैला कर लपटों के सामने करके अपनी मंजरी आँख चुधी करके देखता और पीली खाल मे से झलकते हुए सुख खून को देखकर आप ही सराहता और फिर दो घण्टे तक अजीब और उक्ता देने वाली बातचीत जारी रहती।

साधारणतया बातचीत की शुरुआत अपनी बुद्धिमत्ता की डीगो से और अनपढ़ गँवार की शक्ति से करता जिसने एक बड़ा कारोबार खड़ा कर लिया जिसे वह मूर्खो और चोरो को काबू मे करके उनकी मदद स चला रहा है। इस विषय पर वह बड़ी लम्बी-चौड़ी बाते करता रहता लेकिन एक प्रकार की ऊब के साथ। बीच-बीच मे एक लम्बे अवकाश के बाद और बार-बार सर्द आहे इस तरह भर कर मानो सीटियाँ बज रही हों। कभी-कभी ऐसा मालूम होता था जैसे वह अपवी व्यवसायिक सफलतायें गिनाते-गिनाते थक गया हो। और अपने ऊपर बड़ा जब्र करके उनका जिक्र कर रहा हो।

उसकी वास्तव मे अनुपम प्रतिभा पर अचरज करते-करते मैं काफी समय हुआ थक चुका था। सड़े-बुसे और सीले हुए आटे का भाव-ताव करके सस्ते दामों खरीद लेने, फफूंदे हुए खराब बिस्किट मनों की मात्रा में गाँव के व्यापारियों के हाथ बेच देने मे उसे कमाल हासिल था। धोखेभरा साम्य और लज्जास्पद सादगी के साथ सौदागरी की ये शोब्दा-बाजियाँ विफल होकर रह गई थीं और उन्होंने मनुष्य के लोभ व मूर्खता को बड़ी निर्दयता से नग्न कर दिया था।

तन्दूर में जलती हुई लकड़ियों में से लपटें निकल रही थीं। मैं और मेरा मालिक तँदूर के आगे बैठे थे। उसकी तोंद की मोटी-मोटी शिकनें उसके घुटनों तक लटकी हुई थीं। भड़कती हुई आग की लाली उसके अँधियारे चेहरे पर कौंदे की तरह लपक रही थी। घोड़े के जुए की धातु की तरह उसकी फुल्ली, पथराई हुई और डबडबाई हुई आँख, किसी बूढ़े-फूस फकीर की आँखों के तुल्य थीं। और मँजरी, बिल्ली के दीदों की नाईं चमकती हुई आँख बड़ी तेजी के साथ झपक रही थी और उसमें एक विचित्र प्रकार के जीवन की झलक आती थी। उसकी अजीब आवाज़—कभी स्त्री की आवाज़ की तरह तेज़ और महीन हो जाती और कभी भारी चीख बन कर निकलती—संतोषपूर्ण और ग्लानि पूर्ण शब्द निकाल रही थी।

"तुम दूसरों पर हद से ज्यादा भरोसा करते हो और बहुत-सी ऐसी बातें कह जाते हो जो तुम्हें नहीं कहनी चाहियें। लोग दग़ाबाज़ होते हैं, उन्हें बड़ी सावधानी और खामोशी के साथ सम्हालना चाहिये आदमी को शेर की निगाह से देखो और एक शब्द न कहो। अपनी ज़बान बिल्कुल बन्द रखो। जरूरत ही नहीं कि वह तुम्हारी बात समझे। ज़रूरत इस बात की है कि वह तुमसे डरे और यही अन्दाज लगाता रहे कि तुम्हारा मक्सद क्या है!"

"मेरा तो यह इरादा बिल्कुल भी नहीं है कि मैं लोगों को सँभालूँ।"

"झूठ! इसके बिना तुम्हारा गुज़ारा ही नहीं हो सकता!"

उसने मुझे समझाना शुरू किया: "कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें काम करना पड़ता है और बाक़ी ऐसे जो इन्तेज़ाम करते हैं। और अफसरों को इस बात की निगरानी करनी पड़ती है कि काम करने वाले व्यवस्थापकों की आज्ञा का बिना चूं-चरा के पालन करें।"

"जिनकी ज़रूरत न हो उन्हें लात मार कर निकाल बाहर करो। ऐरे-ग़ैरे का क्या काम?"

"और वे जायें कहां ?"

"मेरी बला से कहीं जायें । आवारा मर्द और चोरों के लिए—तमाम निकम्मे लोगों के लिए ही तो अफसर-हाकिम हैं । जो आदमी किसी क़ाबिल होता है उसे अफसरों की ज़रूरत ही नहीं होती; वह खुद अपना हाकिम होता है । अब गवर्नर-जनरल से तो यह आशा नहीं की जा सकती कि उसे यह मालूम हो कि मेरे लिए कौन-सा आटा अच्छा है और कौन-सा नहीं । उसका काम तो यह जानना है कि कौन-सा आदमी काम का है और कौन-सा बेकार ।"

कभी-कभी मुझे ऐसा लगता कि उसकी आवाज में भावुक उत्साह है । शायद यह किसी और ही चीज़ की लगन थी, किसी ऐसी वस्तु की अभिलाषा जिसे वह स्वयं भी नहीं जानता था । और मैं उसकी बात-चीत पूरी एकाग्रता के साथ और बड़ी उत्सुकता से सुनता ताकि उसका मतलब समझ में आजाय । और नये-नये शब्द सुनने की मैं सदैव प्रतीक्षा करता रहता ।

तन्दूर के नीचे से चूहों, जली हुई चटाई और धूल आदि की दुर्गन्ध आ रही थी । चीकट दीवारों में से गर्म और सीले हुए भभके निकल रहे थे । फर्श बहुत ही गन्दा और पुराना हो चुका था । खिड़की में से छन-छन कर आन वाली चाँदनी ने फर्श की काली दरारों को और भी अधिक स्पष्ट बना दिया था । खिड़की के शीशों पर जगह-जगह मक्खियों के गुच्छे चिपके हुए थे । मालूम होता था कि मक्खियों ने खुद आकाश को भी दाग़दार बना दिया है । यह जगह बड़ी घुटी हुई, गुंजान और इतनी गन्दी थी कि उसका साफ करना असम्भव था ।

क्या एक आदमी का इस प्रकार जीवन व्यतीत करना शोभनीय है ?

मेरा मालिक एक-एक शब्द आहिस्ता–आहिस्ता टटोल कर बोल रहा था । इस तरह बोलते हुए देखकर सहसा उस अँधे फकीर की आकृति

आँखों में फिर छाजाती थी जो अँधेरे में अपनी कपकपाती हुई उँगलियों से अपने कासे मे पैसा–धेला टटोल रहा हो ।

"विज्ञान—अच्छा भई मान लिया ठीक है ! तो फिर कोई वैज्ञानिक मुझे आकर बताये कि मिट्टी या कीचड़ से आटा कैसे बनता है । और हाँ, देखो तो सामने एक भव्य इमारत है—विश्व विद्यालय कहते हैं उसे । वहाँ के छात्र युवा और दिल्लगीबाज़ हैं; शराबखानों मे मारे–मारे फिरते हैं । पी-पीकर बदमस्त हो जाते है और बाजारो ऊधम मचाते फिरते हैं । सेंट वेर्लाम के बारे में अश्लील व गंदे गाने गाते हैं, पेस्की बाजार में वेश्याओं के यहाँ जाते हैं और आम तौर पर उनकी जिन्दगी पावन पादरियों की-सी होती है ।..."

और फिर उसके बाद अचानक कोई डाक्टर बन जाता है तो कोई जज, कोई शिक्षक बन जाता हे तो कोई वकील । क्या तुम मुझसे आशा करते हो कि उन पर विश्वास करूँ ? क्यों वह तो शायद मुझसे भी ज्यादा बेईमान हैं । मुझे तो किसी पर भरोसा नही ।..."

और भृष्टाचारियों की तरह होठों पर ज़बान फेरते हुए उसने अत्यन्त भोंडे तथा ग्लानिपूर्ण विवरण के साथ बताना शुरू किया कि विद्यार्थी लड़कियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं ।

स्त्रियों के सम्बन्ध में वह बड़ी देर तक बातें करता रहा । उसका ढंग बड़ा अरोचक एवं रूखा था । एक विलक्षण एकाग्रचित्तता के साथ वह बोल रहा था और उसकी आवाज शनैः शनैः धीमी होते-होते मात्र खुसर-पुसर में परिणत होगई थी । औरतों की शक्ल व सूरत का वह कभी जिक्र नहीं करता था बल्कि उनकी छातियों, जाँघों और टाँगों का विवरण से वर्णन करता था । उसके ये किस्से मुझे बड़े असह्य मालूम होते थे ।

"तुम जब देखो अन्तःकरण की और खरेपन की बातें करते रहते हो । मैं तुमसे ज्यादा खरा आदमी हूँ; तुम उद्दण्ड तो जरूर हो लेकिन खरे

या स्पष्टवादी नहीं, जर्रा भर भी नहीं। मुझे तुम्हारी दो-एक हरकतें मालूम हैं। अभी थोड़े ही दिन हुए तुमने शराबखाने में एक अखबार के प्रतिनिधि से कहा था कि मेरे यहाँ आटे की नाँदों में सड़ाँद है, आटे का ख़मीर उठता है तो सारा फर्श पर बह निकलता है। झींगरों की भरमार है और कारीगरों को आतशक है, हर जगह गंदगी है।..."

"तुमसे भी तो कहा था यह सब कुछ मैंने।..."

"हूँ, कहा तो था। लेकिन यह तो नहीं कहा था कि तुम यह सूचना अखबारों को देना चाहते हो ? अच्छा अखबारों में ये सब बातें प्रकाशित हुईं, पुलिस आई, सफाई के महकमे वाले भी आये। मैंने पाँच-पाँच के बीस नोट उनमें बाँट दिये। और देख लो, क्या बिगाड़ लिया किसी ने मेरा ?" उसने अपना हाथ चक्र की तरह अपने सीने पर फिराया और बोला: "देखा तुमने ! जो पहले था सो अब भी है—झींगर सब मौजूद हैं, मजे से उछलते-कूदते फिरते हैं। धरे रह गये तुम्हारे अखबार, तुम्हारा विज्ञान, तुम्हारा अन्तःकरण ! अरे बौड़म, तेरी समझ में यह नहीं आता कि उल्टा तुझ पर ही वार हो जाता। आस-पास की सारी पुलिस मेरी जेब में है। सब अफसर मेरे इशारों पर नाचते हैं, तुम्हारी एक नहीं चलेगी। और तुम इसके खिलाफ डट कर खड़ा होना चाहते हो जैसे कोई झींगर कुत्ते के मुकाबिले में आखड़ा हो, हूह ! तुमसे बातें करने से तो मुझे मतली आने लगती है।...'

वास्तव में ऐसा प्रतीत होता था कि उसको मतली हो रही हो उसका मुँह उतर जाता, मारे थकावट के उसकी आँखें बन्द हो जातीं और वह एक हल्की-सी आवाज के साथ जम्हाई लेता। उसके खुले हुए सुर्ख जबड़ों में कुत्ते जैसी पतली-सी ज़बान दिखाई देने लगती।

उससे मुलाकात होने से पहले मैं इन्सानी गंदगी, निर्दयता और मूर्खता बहुत कुछ देख चुका था। और भलाई तथा वास्तविक मनुष्यता से भी कुछ कम मेरा वास्ता न पड़ा था। मैं कुछ अत्यन्त सुन्दर पुस्तकें

पढ़ चुका था और मैं जानता था कि मुद्दतों से और हर जगह लोग एक विभिन्न प्रकार के जीवन के स्वप्न देख रहे हैं और यह भी कि कुछ जगहों पर उन्होंने अपने सपनों को व्यवहारिक रूप देने के लिए कोशिशें भी की थीं । और अब भी वे उनकी पूर्ति के लिए सचेष्ट थे । और वर्तमान परिस्थिति से असन्तोष के मेरे दूध के दाँत असी हुआ टूट चुके थे और अपने उस मालिक से मुलाकात होने से पहले तक मुझे विश्वास था कि मेरे ये दाँत काफी मजबूत हैं ।

अब ऐसी हर बातचीत के बाद मुझे पहले से ज्यादा अच्छी तरह और अफसोस के साथ अनुभव होता कि मेरे विचार और स्वप्न कितने क्षीण और क्रमहीन हैं । मेरा मालिक उन्हें किस तरह तार–तार कर रहा था, उनके अँधकारमय पहलू मुझे दिखा रहा था और मेरा दिल दुःखद संदेहों से डूबने लगा था । मैं जानता था, मुझे अनुभव था कि मेरी हर आस्था का संतोष के साथ विरोध करना उसकी ग़लती थी और मैंने एक क्षण के लिए भी अपने सिद्धांतों की सत्यता पर शक नहीं किया । लेकिन इस सच्चाई पर वह जो कीचड़ उछालता था उससे उसे बचाना मेरे लिए कठिन था । अब प्रश्न यह नही था कि मैं उसे झुटलाऊँ बल्कि अब समस्या थी अपनी अन्दरूनी दुनिया की सुरक्षा की जिस पर मालिक के नकचढ़ेपन के सामने मेरी अपनी अयोग्यता की घातक भावना आक्रमण कर रही थी ।

उसके भद्दे और भारी मस्तिष्क ने पूरी जिन्दगी को इस तरह टुकड़े-टुकड़े कर दिया था जैसे कोई किसी जिस्म को कुल्हाड़ी से काट डाले और उन टुकड़ों का एक ढेर-सा उसने मेरे सामने लगा दिया था ।

आत्मा और परमात्मा के बारे में उसकी बातों ने मेरी तरुण उत्सुकता को जगा दिया था । मेरी हमेशा यही कोशिश होती थी कि बातचीत का रुख इन समस्याओं की ओर मोड़ दूँ । शायद मेरी इन कोशिशों को महसूस न करते हुए मेरा मालिक यह साबित करने लगता कि

जिन्दगी के रहस्यों और घातों से मैं कितना अनभिज्ञ हूँ ।

"जिन्दगी तेर करना बड़ी सावधानी का काम है । जिन्दगी इन्सान से हर चीज की माँग करती है—यों समझो जैसे कोइ रखेल, लेकिन उससे क्या तुम कुछ अधिक माँगते हो ? नहीं, सिर्फ एक चीज—मज़ा ! मक्कारी और चालाकी भी जीवन के लिए अत्यावश्यक है । खुशामद-दरामद से काम निकल सके तो निकाल लो अगर यह न कर सको तो झपट लो, या लेकर डण्डा मारो—तडाख ! और फिर जिन्दगी तुम्हारी लौंडी है ।"

यदि उसकी बातों पर झल्लाकर मैं सीधे प्रश्न करने लगता तो तो वह उत्तर देता:

"इससे तुम्हारा कोई वास्ता नहीं । मैं भगवान में विश्वास रखता हूँ या नहीं इसका उत्तरदायी मैं हूँगा, तुम नहीं !"

और जब मैं अपनी मनोनीत समस्याओं पर बातचीत शुरू कर देता तो वह अपना सिर इस तरह हिलाता मानो कोई सुभीताजनक स्थिति ज्ञात करना चाहता हो । अपना छोटा-सा कान मेरे मुँह की ओर झुका देता और बड़े सन्तोष व धैर्य के साथ बैठा सुनता रहता । इस स्थिति में हमेशा ही उसकी पकौड़ा-सी नाक वाले चपटे चेहरे पर उदासीनता के भाव उभर आते । उस चेहरे को देखकर ताँबे का वैसा ही ढँकना अनायास स्मरण हो आता जिसके बीच में एक मुठिया लगी हो ।

वेदना का एक कटु भाव मेरे हृदय में जम गया था, उसका कारण मेरा व्यक्तित्व न था । घृणा करते-करते अब मैं थक चुका था और जिन्दगी की ठोकरें काफी खामोशी के साथ सहन कर लेता और उन्हें हेय समझ कर उनके सामने डट जाता था । बल्कि इस अनुभव का आधार वह सत्यता थी जो मेरी आत्मा में घुस आई थी । और वही विकसित हो रही थी ।

जब मनुष्य अपनी प्रिय और जीवन की महत्वपूर्ण तथा प्राप्य वस्तु

की उसके लिए शोभनीय सुरक्षा करने का अपने को अपात्र समझता हो तो उसका अनुभव अत्यन्त दुःखदाई और उसकी वेदना व कसक नितांत तीव्र हो जाती है। मनुष्य के लिए उसके दिल की बेजबानी से ज्यादा तेज और कोई चीज़ नहीं होती ।

चूँकि हमारा मालिक रात को आकर मझसे बातचीत किया करता था इसलिए कारीगरों की निगाहों में मुझे एक विशेष महत्व मिल गया था। बाज़ लोग जो मुझे खतरनाक आदमी समझते थे और बाकी जो एक विचित्र व्यक्ति तथा सनकी समझा करते थे अब उन्होंने अपनी राय बदल दी थी । अधिकतर कारीगर मेरे सौभाग्य पर मुझसे अपनी नफरत व जलन छिपाने की असफल चेष्टा करते और मुझे एक अत्यंत धूर्त व्यक्ति समझते थे जो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए कोई बड़ी गहरी चाल चल रहा हो ।

कुज़िन ने अपनी मैली, धूल भरी छोटी-सी दाढ़ी पर हाथ फेरते और अपनी चंचल आँख को कहीं एक कोने में छिपाते हुए आदर के साथ कहा:

"अच्छा भाई, अब तो तुम बहुत जल्दी क्लर्क बना दिये जाओगे, और अब आश्चर्य की कोई बात भी क्या है इसमें ?..."

किसी ने धीरे से उसका साथ दिया:

'हमें डराने-धमकाने के लिए.. ।"

मेरी पीठ पीछे और भी कई कटू वाक्य सुनाई दिये:

"जिसके मुँह में ज़बान हो वह तो कीव क्या कहीं और जाने का

रास्ता भी तलाश कर सकता है...।"

"घूस खिलाओ इसे···।"

और बहुत-से तो अब मेरी आँख के इशारे की प्रतीक्षा करते कि फौरन ही एक अनेच्छा भरी आज्ञाकारिता से आज्ञा का पालन करें।

आर्तेम, याश्का और उनके अलावा दो-एक और कारीगरों ने जिनसे मेरी मित्रता हो गई थी अब अपने इन सम्बन्धों में मेरी बातों पर अतिशयोक्ति पूर्ण ग़ौर करना भी शामिल कर लिया था। एक दिन मेरा सन्तोष समाप्त हो गया और मैंने नाराज़ होकर बंजारे से कहा कि मैं इस हरकत को बिल्कुल अनावश्यक और बहुत ही दोषपूर्ण समझता हूँ।

"अच्छा बस रहने दो, मेरी बात मानो!" उसने मेरा मतलब समझते हुए कहा और शरारत में अपनी आँखें चढ़ालीं। "अगर हमारा मालिक जो हम सबसे ज्यादा चालाक है तुमसे अपने मामलों पर बहस करता है तो मेरा विचार है कि तुम्हारे पास भी बड़े-बड़े गुर हैं।"

दूसरी ओर शातुनोव, जो सदैव खिचा-खिचा और खामोश रहता था, अब मेरे बहुत निकट आगया और दिन-प्रति-दिन अधिक विश्वास करने लगा था। जब कभी हमारा आमना-सामना हो जाता तो उसकी उदास और रहस्यमयी आँखे चमक उठतीं और उसके मोटे-मोटे होंठ आहिस्ता-आहिस्ता फैल कर मुस्कराने लगते और उसके कठोर, पथरीले चेहर में परिवर्तन झलक उठता।

"क्यों, अब तो आराम से हो?"

"आराम से तो नहीं, हाँ सफाई से...।"

"सफाई अगर है तो उसका अर्थ है आराम!" वह उपदेशकों की तरह कहता, फिर एक कोने की तरफ निगाहें फेरकर जैसे बिना किसी इरादे के पूछता:

"सादरसन माम् क्या है, जानते हो?"

ऐसे ही शब्दों का उसके पास भण्डार था। और जब वह अपनी

भारी व भयानक आवाज़ में उनका उच्चारण करता तो बड़ा ही विचित्र-सा लगता । और उनमें एक प्रकार की प्राचीन, कल्पित कथा का आभास होने लगता था ।

"ये शब्द तुम कहाँ से सीख लेते हो ?" मैंने एक बार चकित हो पूछ ही लिया । मेरी उत्सुकता चरम सीमा को पहुँच चुकी थी । उसने भी ज़रा सम्हल कर प्रश्न किया:

"तुम्हें आखिर यह जानने की लालसा क्यों है ?"

फिर दुबारा मानो मुझे ग़च्चा देने की चेष्टा करते हुए वह अचानक एक सवाल और कर बैठा:

"हर्ना का क्या अर्थ है ?"

कभी-कभी किसी दिन शाम को काम के बाद या किसी छुट्टी के दिन नहाने-धोने से निपट कर बंजारा और आर्तेम मेरे पास आ धमकते और उनके पीछे ही पीछे ओसिप शातुनोव भी आ घुसता । हम एक अँधियारे कोने में तँदूर के मुँह के इर्द-गिर्द बैठ जाया करते । मैंने यह कोना झाड़-पोछ कर और धो-धुला कर साफ व आरामदेह कर लिया था । दाहिनी बाजू और पीठ के पीछे बड़े-बड़े ताक़ थे । उनमें डबल रोटियों के साँचे रखे थे, जिनमें ख़मीरी आटा फूल कर उभरा हुआ था । उन्हें देख कर यह गुमान होता था कि जैसे गंजे सिर छिपे हुए हों और दीवारों से झाँक कर हमें देख रहे हों । टीन की एक बड़ी चायदानी में से गहरे रंग की चाय निकाल-निकाल कर हम लोग पीने लगते । याश्का सलाह देता:

"अच्छा तो अब हमें कुछ सुनाओ, या ऐसा करो दो-चार कविताएँ ही सुनादो !"

स्टोव के ऊपर रखे हुए मेरे सन्दूक में मेरे पास पुश्किन श्चरबिना और सुरिकोव की कविताओं के संग्रह थे—भद्दे और छोटे-छोटे खण्ड जो मैंने पुरानी किताबें बेचने वालों की दूकान से खरीदे थे । मैं बड़े जोशीले ढंग से गुनगुना कर पढ़ने लगता:

किस क़दर ऊँचे हैं ऐ इन्सान तेरे सारे काम
तूने दुनिया को दिया है एक जैसा ही निज़ाम
कितने दिलकश, कैसे हैरतख़ेज, कितने शानदार
पड़ रही है खुद खुदा के नूर की जैसे फुहार
तू ही देता है हमें सच्ची मुहब्बत बेहिसाब
और सबको अपने-अपने काम का सच्चा जवाब

पाश्का ने आहिस्ता-आहिस्ता आँखें झपकाते हुए इधर-उधर से किताब को झाँक कर देखा और आश्चर्यचकित होकर बड़बड़ाया :

"वाह, क्या खूब ! बिल्कुल बायबिल की तरह ! अरे, गिरजे में यही गीत गाया जा सकता है तो भगवान मेरी सहायता कर...।"

कविता लगभग सर्वदा ही उसके भावों में उत्तेजना-सी उत्पन्न कर देती थी और उस पर एक पश्चाताप की स्थिति छा जाया करती थी। कभी-कभी जो पद उसे बहुत अधिक प्रभावित करते उन्हें वह हाथ हिला-हिला कर अपने घुँघरियाले बालों को मुट्ठी में भींच कर और बड़ी निर्भीकता से गालियाँ देकर, जमा-जमा कर दोहराता :

"वाह, वाह क्या खूब कहा है !"

जब लिखी है मेरी क़िस्मत पर सदा यह मुफ़लिसी
सारी उम्मीदें भुलादें अब तो अच्छा है यही

"अरे वाह ! क्या कहा है ! भगवान की कसम कभी-कभी तो भाई अपनी जिन्दगी पर ऐसा ही दुःख होता है। बरबाद हो जाती है, व्यर्थ नष्ट हो जाती है। ऐसी कसक होती है कि दिल को मसोस कर रख देती है—ऐसी कि नरक से भी बदतर। कोई करे तो क्या करे ? डाकू बन जाय ? एक छोटे-से पत्थर से तो चिड़िया भी नहीं मारी जा सकती और तुम हो कि हमसे कहते रहते हो—लड़कों, मिल-जुल कर रहा करो ! दोस्तो की तरह रहो ! हे भगवान !"

आर्तेम कविता सुनते समय ऐसी आवाजें निकालता जैसे कोई चीज़

निगल रहा हो। होंठों पर इस तरह जीभ फेरता मानो कोई गरम-गम स्वादिष्ट चीज खा रहा हो।

प्रकृतिक दृश्यों के वर्णन पर वह सर्वदा चकिता होकर रह जातर था।

सिरों पर सुनहरे दरख्त जगमगाये
दरख्त झील पर हैं खड़े सर झुकाये

"ठहरो! उसने विस्मित होकर और खुशी में उछल कर कहा। और जब उसने मेरा कंधा पकड़ कर मुठ्ठी में भीचा तो उसका चेहरा मारे खुशी के दमक रहा था, 'मैंने भी देखा है! आर्स्क के समीप! वहाँ के एक सामन्त के इलाक़े में! हे परमात्मा मेरी मदद कर!"

"अच्छा तो इससे क्या हुआ?" याश्का ने झल्लाकर पूछा।

"लेकिन तुम समझते क्यों नहीं? मैंने यह हाथ देखा है और इसी पर यह पद भी लिखा हुआ है।"

"बीच में मत बोलो! बेकार बकवास लगा रखी है।"

एक बार आर्तेम सुरिकोव की कविता 'गाँव में' से बड़ा प्रभावित हुआ। और कोई तीन-चार दिन तक वह उस कविता को एक पुरानी सैनिक गीत की लय पर गाता फिरा यहाँ तक कि लोग सुनते-सुनते उक्ता गये:

जैसे-तैसे योंही जारी है सफर
जा रहा हूँ मैं खुदा जाने किधर
है किसे परवाह कुछ ही क्यों नहीं
घूमता फिरता रहूँ चाहे जिधर
जानता हूँ इस सफर का खात्मा
मुझको पहुँचा देगा आखिर अपने घर

शातुनोव पदों व कविताओं से ज़रा भी प्रभावित न होता था और वह कविताएँ बिल्कुल उदासीनता से सुनता रहता था। पर कभी-कभी

वह एक शब्द को ही पकड़ कर बैठ जाता और उसके अर्थ को समझवाये बिना पीछा न छोड़ता था।

"एक मिनट ! एक मिनट ठहरो ! वह क्या है ?—कब्र ?"

शब्दों के पीछे उसकी इस भाग-दौड़ से मैं बड़ा अचम्भित था और मुझे इसका पता लगाने की उत्सुकता हुई कि आखिर वह मालूम क्या करना चाहता है।

एक बार सवालों व आग्रहों की बौछार समाप्त होने के बाद ओसिप ने कुछ बड़प्पन-भरी मुस्कान के साथ यह रहस्य भी खोल ही दिया:

"क्यों, तुम भी कारण जानने के लिए उद्विग्न हो ?"

फिर रहस्यमय ढंग से चारों ओर देखते हुए उसने आहिस्ता-आहिस्ता खुसर-पुसर के स्वर में कहा:

"दरअसल एक ऐसा रहस्यमय पद है कि जिस किसी को भी मालूम हो जाय वह जो चाहे सो कर सकता है ! लेकिन कहते हैं कि अब तक पूरा पद किसी को मालूम नहीं है। इस पद के सारे शब्द विभिन्न लोगों में बाँट दिये गये हैं और ये लोग सारी दुनिया में फैले हुए हैं और उस समय तक फैले रहेंगे जब तक कि नियत घड़ी न आ पहुँचे। अच्छा—तो भई इन तमाम शब्दों को एकत्र करना है और उन्हें जोड़ कर पूरा पद बनाना है।"

उसकी आवाज़ और भी धीमी हो गई और वह बिल्कुल ही मेरे ऊपर झुक गया।

"अरे इस पद को हर तरफ से पढ़ा जा सकता है, चाहे आदि से पढ़ो चाहे अन्त से अर्थ एक ही निकलता है। मेरे पास कुछ शब्द तो एकत्र हो चुके हैं। अस्पताल में एक खानाबदोश ने मरने से पहले मुझे बताये थे। समझे भाई, तो ये खानाबदोश दुनिया भर में मारे-मारे फिरते हैं और जहाँ कहीं भी इन्हें ये गुप्त शब्द मिलते हैं वे याद कर लेते हैं। जब वे सब शब्द याद कर लेंगे तो फिर सभी को इसकी खबर

हो जायगी...।"

"वह कैसे ?"

उसने अविश्वास से मुझे सिर से पाँव तक गौर से देखा और कुछ नाराज़गी के स्वर में कहा:

"कैसे, कैसे ! तुम खुद भी तो जानते हो...।"

"भई धर्म-ईमान से कहता हूँ मुझे कुछ भी तो नहीं मालूम...।"

"अच्छा, अच्छा ।" वह जाने के लिए मुड़ते हुए गुर्राया, "बस बनो नहीं ...!"

और एक रोज सुबह आर्तेम दौडा-दौड़ा मेरे पास आया । वह बड़ा ही खश था, उसकी साँस फूली हुई थी । हाँपते हुए बोला:

"बड़बडिये, मैंने भी अपने आप एक पद रचा है, सचमुच रचा है !"

"अच्छा ?"

"मैं झूठ बोलूँ तो जो चोर की सज़ा सो मेरी। शायद मैंने सपने में देखा हो क्योंकि मैं सोकर उठा और लो पद तैयार । मेरे दिमाग़ में किसी पवित्र चक्कर की तरह लगा रहा है चक्कर । लो सुनो...।"

खूब तन कर खड़े होकर उसने बड़े ज़ोरदार अंदाज में लेकिन आहिस्ता-आहिस्ता गुनगुनाते हुए पढ़ना शुरू किया:

हो रहा है गर्क दरिया में वह रंगी आफताब
जंगलों में डूबने वाला है अब उसका शबाब
और गडरिया अपने गल्ले को सँभाले चल पड़ा
और.....वह.....गाँव

"क्यों यह कविता कैसी रही ?"

उसने बेचारगी से छत की ओर देखा, उसका चेहरा पीला हो गया था । होंठ चबा-चबा कर वह खामोशी और मायूसी के साथ आँखें झपकाने लगा । फिर उसके दुबले-पतले कंधे आगे को झुक गये । और उसने

घबराहट से तंग आकर हाथ हिलाते हुए कहा :

"भूल गया, मारो गोली । बिल्कुल ही याद नहीं रहा ।"

और बेचारे की आँखों से टप–टप आँसू गिरने लगे—उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से आँसुओं की सरिता–सी बहने लगी । उसका भयभीत, मुर्झाया हुआ चेहरा भौचक्का–सा हो गया था । और उसने सीने के ऊपर से दिल को सहलाते हुए अपराधी की नाईं कहा :

"देखो तो,...च च···कितना अच्छा पद था...दिल को लगता था ...हाय...तुम समझते हो मै मजाक कर रहा हूँ ?"

सिर झुकाये वह एक कोने की ओर चल दिया और वहीं कंधे व कमर झुकाये खड़ा रहा । फिर चुपचाप अपना काम करने चला गया । सारा दिन वह खोया-खोया और उदास रहा । और शाम को शराब इतनी पी, इतनी पी कि बदमस्त होगया और बात-बात पर लड़ने-मरने को तैयार होगया । चीख कर बोला:

"कहाँ है याश्का, ? क्या होगया मेरे छोटे भाई ? अरे भगवान तुम्हें समझे..."

कारीगर उसे खूब पीटना चाहते थे लेकिन बंजारे ने उसका पक्ष लिया और हमने बदमस्त आर्तेम को बोरियों में लपेट कर सुला दिया ।

सपने में जो पद उसके मस्तिष्क में आये थे वे उसे फिर कभी याद न आये ।

बेकरी और हमारे मालिक के कमरे के दरम्यान लकड़ी के पतले–पतले तख्तों की एक दीवार थी जिस पर कागज़ चढ़ा हुआ था और

अक्सर जब मैं ज़ोर-ज़ोर से पढ़ना शुरू कर देता तो मालिक तख्तों की दीवार पर जोर से मुक्का रसीद करके मुझे भी चौंका देता और झींगरों को भी । मेरे साथी चुपचाप सोने चले जाते । उछलते-कूदते झींगर फटे हुए काग़ज में सरसराते रहते और मैं अकेला रह जाता।

लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता कि हमारा मालिक अचानक और दबे पाँव, खामोशी के साथ काले बादल के एक टुकड़े की तरह तैरता हुआ दरवाजे में दाखिल होता और बिना आशा के हमारे झरमट में आ खड़ा होता और दाँत कटकटा कर कहता:

"आधी-आधी रात तक बैठे रहो कमबख्तो ! और सुबह न जाने कब तक पड़े खर्राटे लेते रहना ।"

यह पाश्का और दूसरे लोगों के लिए था । मुझ पर वह यों गुर्राता:

"अरे गवैये, ये रात की गोष्ठियाँ फिर शुरू करदीं तुमने ? देखलो तुम्हारी किताबें सुन-सुन कर उनके दिमाग ख़राब न हो जायें और जब धींगामुश्ता पर उतर आयें तो कहीं तुम्हें ही सबसे पहले अपना निशाना न बनायें ।"

यह सब वह एक उदासीन ढंग से कहता—महज़ दिखावे के लिए । महफिल तितर-बितर करने के लिए नहीं । वह खुद भी हमारे पास फर्श पर बैठ जाता और बेतकल्लुफी से कहता:

"हाँ तो पढो, मैं भी जरा सुनूँ । शायद मुझे भी कुछ अक्ल आ जाय ।..."

"सुनो पाश्का, जरा मेरे लिए चाय तो बनाओ ।"

बंजारा मजाक में कहता:

"वासिली सेम्योनिच ! हम चाय से आपकी खातिर करें और आप हमारी वोडका से ।"

मालिक खामोशी से एक खाली-खूली नजर उस पर डाल कर रह

जाता।

और कभी ऐसा होता कि वह थकी हुई ग़मगीन आवाज में यह कहता हुआ हमारे साथ शामिल हो जाता।

"अरे लड़को,...नींद नहीं आती...चूहे खड़बड़–खड़बड़ कर रहे हैं, कमबख्त! बाहर बर्फ चरमुरा रही है।—लानत हो इन विद्यार्थीयों पर, मटरगश्त करते फिर रहे है।—दुकान के अदर-बाहर लड़कियाँ–ही–लड़कियाँ है। अन्दर आती हैं आग सेकने, वेश्याएँ कहीं की! तीन कोपेक की एक खरीदी और आध घण्टे तक आग तापने को अन्दर ही टहलती फिरी।"

बस फिर क्या था, हमारे मालिक की फलसफाबाजी शुरू होजाती।

"सब ऐसे ही होते है, दो कुछ नही और लो सब कुछ। तुम भी—तुम लोग भी बस इस फिक्र में रहते हो कि कोई आसान-सा काम मिल जाय। बस यही तुम्हें आता है। जितनी जल्दी हो सके काम छोड़-छाड़ चल दो। और खाक छानते फिरो गली कूचों की!..."

याश्का चूँकि कारखाने का सरदार था इसलिए यह बात उसे काँटे की तरह चुभती और वह तड़प उठता; फिर खवामखवाह की बहस छिड़ जाती:

"तुम अब भी सन्तुष्ट नहीं हो, वासिली सेम्योनिच! अब भी हम जिन्नात की तरह काम करते हैं, समझे! हाँ, यह सम्भव है कि जब तुम स्वयं काम करते थे तब वैसा ही..."

हमारा आक़ा भूली-बिसरी बातों का स्मरण पसन्द नही करता था। थोड़ी देर तक तो वह नानबाई की बातें खामोशी से सुनता रहा; उसके होंठ भिच गये और मँजरी आँख कठोरता से उसे घूरती रही, फिर उसका मेंढक-जैसा मुँह खुला और अनुनासिक ध्वनि में उसका भाषण उमड़ पड़ा:

"बीती ताहि बिसार दे आगे की सुध ले ! पहले की पहले से रही, अब तो मैं तुम्हारा आक़ा हूँ और जो मुझे रुचे, कर सकता हूँ—कानून है कि तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना पड़ेगा समझे ? हाँ बड़बड़िये पढ़े जाओ।"

एक दिन मैंने 'डाकू बन्धु' शीर्षक कविता पढ़ी। सबने यह कविता पसन्द की और उससे रस लिया। यहाँ तक कि हमारे मालिक ने भी विचार-मग्न होकर सिर हिलाते हुए कहा:

"ऐसा हुआ होगा...क्यों नहीं ? हो सकता था ऐसा। इंसान सब कुछ हो सकता है...सब कुछ !"

बंजारे ने नाक-भौं सिकोड़ी और सिगरेट अपनी उँगलियों में दबा कर उस पर जोर से फूँक मारी और आर्तेम एक हल्की-सी मुस्कराहट के साथ कविता के कण्ठाग्र करने के लिए सचेष्ट था।

भाई मेरा और मैं ! हम थे फकत दो ही जने
और न था बचपन खुशी से पुर अपने लिए

शातुनोव तँदूर के अन्दर के गढ़े को घूर रहा था, और वहीं घूरते हुए बोला:

"मुझे इससे अच्छी कविता आती है।..."

"अच्छा तो फिर सुनें हम भी !" हमारे मालिक ने राय दी और बेडौल जिस्म के लम्बे हाथ पर ठोढ़ी जमाकर व्यंग्यपूर्ण ढँग से ध्यान-मग्न होकर कहा। ओसिप इतना घबड़ा गया कि उसकी गर्दन तक लाल हो गई और उसके कान फुरेरियाँ लेने लगे।

"मुझे याद नहीं आरही अब..."

"अरे चलो, शुरू तो करो !" बंजारे ने डाँट बताई, "कोई तुम्हारी ज़बान नहीं पकड़े ले रहा।"

आर्तेम ने ओसिप को चिढ़ाया:

"बेहतर है ना ? तो आओ फिर सुना डालो ना। बोझ हल्का कर

लो ।..."

शातुनोव ने लाचारी और अपराधी की-सी निगाहों से मेरी ओर देखा, फिर मालिक की ओर, और एक गहरी साँस ली ।

"अच्छा तो सुनो ।"

अब भी तँदूर की खोह में घूरते हुए—जहाँ डबलरोटी के टूटे हुए साँचे, लकड़ियाँ और झाड़ुएं बिखरी पड़ी थीं और जो एक ऐसे अधखुले काले मुँह की भाँति दिखाई दे रहा था जिसमें बिना चबाया हुआ ग्रास पड़ा हो । उसने अपनी भारी आवाज़ में गाना आरम्भ किया:

वोल्गा के करीब एक रहजन
झड़ियो में पड़ा था खस्तातन
उसके सीने पर था ज़ख्म कारी
और हंगामे मौत था तारी
आखीरी वक्त में दुआ के लिए
जख्म अपना दबा के हाथों से
पहले घुटनों के बल वह बैठ गया
गिड़गिड़ा कर यह फिर ख़दा सेकहा
रूह बदकार है मेरी यारब
यह गुनाहगार है तेरी यारब
तू मेरी रूह को जुदा कर दे
जिस्म की क़ैद से रिहा कर दे
कितनी बदकार है यह मेरी रूह
हाँ गुनाहगार है यह मेरी रूह
जबकि अहदे शबाब था मुझ पर
मुझको बनना था राहिने खुशबू
आज मैं बन गया मगर ड़ाकू

शातुनोव गुनगुनाकर कविता पढ़ रहा था । अपनी कमर दुहरी करके

और अपने नंगे पाँव का अँगूठा हाथ में दबोचकर उसने अपना चेहरा छिपाया हुआ था और न जाने क्यों वह अपना पाँव निरन्तर उछालता रहा । ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह कोई जादू कर रहा हो और साथ-साथ कोई मंत्र पढ़ता जाता हो—

कारनामों में सरफरोशी के
उम्र अपनी गुज़ार दी मैंने
जो बरादुर हो ख़ौफ क्या जाने
मुझको अच्छे लगे न हंगामे
जिन्दगी काट दी समझने में
मैंने उस रूह को परखने में
सुबह हस्ती की शाम कर डाली
अपनी कूवत तमाम कर डाली
उम्र भर सोचता रहा हूँ मैं
रूह से पूछता रहा हूँ मैं
क्या खुदा ने सिफत तुझे दी है
तुझ में क्या खासियत है खूबी है
पाक मरियम के तोहफए नायाब
सुन तो ऐ मेरी रूह आलमताब
तीरगी का हसीन शहज़ादा
यानी शैताँ सितम का दिलदादा
कौन सा बीज बो गया तुझ में
हाय क्या शै समो गया तुझ में

'तुम बिल्कुल मूर्ख, गधे हो, ओसिप !" मालिक ने अचानक तेज आवाज़ में डाँटते हुए और अपने कन्धों को उचकाते हुए कहा, "और तुम्हारी कविता भी बेहूदा है, किताब वाली कविता की तो यह पासँग भी नहीं ! तुम झूठे हो. तुम्हारे दिमाग़ में गोबर भरा हुआ है ।"

"ठहरो तो, वासिली सेम्योविच !" बंजारे ने उसकी बात काटकर झल्लाकर कहा, "खत्म तो कर लेने दो उसे !"

परन्तु मालिक सुनी-अनसुनी करते हुए भावावेश में कहता ही गया:

"यह तो बिल्कुल नीचता है ! तेरी आत्मा, मेरी आत्मा...पहले तो खूब गुलछर्रे उड़ाए, फिर डर गया और हाय-तोबा करने लगा: हे भगवान, हे भगवान ! भगवान का इससे क्या वास्ता ? पहले तो खूब छककर पाप किये और अब उसके परिणाम से नानी मरती है !..."

उसने जम्हाई ली और मैं समझता हूँ, जान-बूझकर ली । फिर भर्राई हुई आवाज में कहा:

"आत्मा, आत्मा ! और है नहीं कौड़ी बराबर महत्व की ।"

बर्फ का तूफान खिड़की के शीशों को अपने कुरूप पंजों से खुरच रहा था । मालिक ने खिड़की को कनखियों से देखा और फिर एक ही साँस में कहना शुरू किया:

"मुझसे पूछो तो जो व्यक्ति अपनी आत्मा की बड़ हाँकता है, उसे ज़रा भी अक्ल नहीं है । उससे कहा अच्छा भई, तुम्हें यह काम इस तरह करना चाहिए और वह कहता है मेरी आत्मा ने इसकी अनुमति नहीं दी ।—अन्तःकरण कहो या कुछ और जब तक कोई किसी काम के करने से झेंपता रहे उसका फल एक ही जैसा होता है; उसे आत्मा कहो या अन्तःकरण । कोई समझता है कि हर चीज निषिद्ध है । वह जाता है और साधु बन जाता है । कोई और व्यक्ति है जो समझता है कि कोई वस्तु निषिद्ध नही है—वह डाकू बन जाता हे । ये दो प्रकार के मनुष्य हैं, एक प्रकार के नहीं । और उन्हें एक दूसरे के साथ गड़बड़ नहीं करना चाहिए । जो काम करने का है, वह तो करना ही होगा...। और जब कोई काम करना ही है तो अन्तःकरण तन्दूर में जाकर कहीं छिप जायगा और आत्मा पड़ोसिन से मिलने चली जाएगी ।"

बहुत बेढंगेपन से उसने अपनी टाँगें घसीटीं और खड़े होकर किसी पर नज़र डाले बग़ैर ही अपने कमरे में चला गया।

"अच्छा, अब जाओ सो रहो...। बैठे हुए उपदेश दे रहे हो, हूंह! आत्मा! भगवान से प्रार्थना करना बड़ी साधारण बात है और डाकू बन जाना बड़ी बहादुरी नहीं है, हरगिज़ नहीं। अरे मूर्खो! कुछ काम करो काम! हाँ !!"

किवाड़ बन्द करके जब वह चला गया तो बंजारे ने शातुनोव के कुहनी मारते हुए कहा:

"हाँ तो फिर आगे सुनाओ वह गीत!"

ओसिप ने अपना सिर उठाया, एक सिरे से दूसरे सिरे तक सब पर दृष्टि दौड़ाई और फिर दबे स्वर में कहा:

"झूठा है वह!"

"कौन, हमारा मालिक ?"

"हाँ, आत्मा तो है उसके भी। लेकिन उसे सुख-चैन नसीब नहीं है। मुझे खूब मालूम है!"

"उससे हमें क्या गरज़ ?... तुम कहो क्या कहते हो ?"

ओसिप घबरा गया, वह तन्दूर में से रेंगता हुआ निकला और अपने बड़े-से सिर को झटका देकर बोला:

"मैं तो भूल ही गया!"...

"अच्छा, अब झूठ मत बोलो!"

"नहीं, नहीं वास्तव में मुझे नींद आ रही है।"

"अरे तुम्हारी...याद करने की कोशिश तो करो!"

"नहीं, अब तो नींद सता रही है...।"

अब अँधेरे में वह बिल्कुल छिप गया; हल्की-सी आवाज़ में बोला:

"अरे भाईयो! यह ज़िन्दगी भी बड़ी मुसीबत की है हमारी!"...

"वास्तव में ?" आर्तेम बड़बड़ाया। "और हमें पता ही नहीं—धन्यवाद !"

बंजारे ने बड़ी सफाई से अपने लिए एक सिगरेट बनाई और ओसिप की परछाँई अँधेरे में लुप्त होती देखते हुए सरगोशी के अन्दाज़ में कहा:

"इस आदमी का दिमाग़ कुछ कमज़ोर मालूम होता है।"...

फरवरी का बर्फानी तूफान आया हुआ था; हवा चिंघाड़ रही थी; खिड़कियाँ सिर पीट रही थीं; धुँआकश में तेज़ हवा घुसकर सीटियाँ बजाने लगती थी। बेकरी के निविड़ अन्धकार में तेल का टिमटिमाता लैम्प रोशनी पैदा करने की असफल चेष्टा कर रहा था और अँधेरा काँपता हुआ नज़र आ रहा था। सर्द हवा की लहरें कहीं से बराबर अन्दर आ रही थीं और टाँगें ठण्डी बर्फ हुई जा रही थीं। मैं आटा गूँथ रहा था और मालिक नाँद के पास आट के एक बोरे पर बैठा कह रहा था:

"जब तक तुम जवान हो, हर बात पर ग़ौर करो। जब तक कोई पेशा-विशेष न अपना लिया हो, हर प्रकार के काम के बारे मे सोचो। हर पहलू पर दृष्टिपात करो। शायद कोई ऐसा काम सूझ जाए जो तुम्हारे लिए उचित हो। बस ज़रा सोचलो—ऐसी कोई जल्दी नहीं है...।"

बोरे पर बैठे हुए उसने अपने घुटने फैला रखे थे। एक पर उसने शराब का एक कनस्टर टिकाया हुआ था, और दूसरे पर गदली शराब

से आधा भरा हुआ एक गिलास मैले-कुचैले फर्श पर झुके हुए उसके बेडौल चेहरे पर मैं कभी-कभी चुपके से घूर कर देख लेता और जलकर दिल-ही-दिल में सोचता:

"एक-आध ग्लास मुझे भी दे दे...।"

उसने सर उठाया, बाहर की चिंघाड़ें ग़ौर से सुनीं और धीमी आवाज़ में पूछा:

'क्या तुम अनाथ हो ?"

"यह तो पहले भी पूछ चुके हो मुझसे...।"

"भगवान कसम, कितनी कर्कश आवाज़ है तुम्हारी !" उसने एक ठण्डी साँस भरके और अपने सिर को झटका देते हुए कहा, "आवाज़ तो है ही, तुम्हारी बात भी !"

काम समाप्त कर चुकने के बाद, मैं अपन हाथों में चिपका हुआ सूखा आटा खुरच कर साफ कर रहा था। होंठ चाटते हुए उसने शराब पीकर ग्लास खाली किया और दोबारा भरकर मेरी ओर बढ़ाया।

"लो, पियो !"

"शुक्रिया।"

"हाँ, हाँ लो, पियो। मैं झट से बता सकता हूँ कि काम करना कौन आदमी जानता है। और ऐसे आदमी की ग़लतियों को मैं अक्सर अनदेखा कर जाता हूँ। अब मसलन याश्का ही को ले लो। वह मूर्ख भी है और चोर भी। लेकिन फिर भी मैं उसका आदर करता हूँ; उसे अपने काम से शौक है। शहर में उससे अच्छा नाई कहीं नहीं मिलेगा। जो शख्स काम करना पसन्द करता है, ज़िन्दगी में उसके लिए रिआयत करना और मरने के बाद उसका सम्मान करना हमारा कर्त्तव्य होजाता है। निश्चय ही !"

नाँद को ढँक कर मैं आग सुलगाने चला गया। मेरा मालिक कराहता हुआ उठा और एक भूरी गेंद की तरह लुढ़कता हुआ चुपचाप मेरे

पास आया और बोला:

"जब कोई आदमी अच्छा काम कर रहा हो तो उसके अनेक दोष व त्रुटियाँ क्षम्य हैं।...उसके अवगुण उसकी मृत्यु के साथ समाप्त हो जाएंगे किन्तु उसके गुण जीवित रहेंगे।"

तँदूर में टाँगें लटकाते हुए वह धम्म से ज़मीन पर बैठ गया, शराब का कनस्टर अपनी बाजू में रख लिया, आग को देखने के लिए झुका और देखकर बोला:

"लकड़ियाँ काफी नहीं हैं। देखो तो ज़रा।"

"बहुत हैं, सूखी वैसे हैं और फिर आधी उसमें चीड़ की हैं।"

"हूँ...उख...।"

वह धीरे से क़हक़हा मारकर हँसने लगा और मेरे कंधे पर हाथ मारते हुए बोला, "बड़े होशियार हो। यह न समझना कि मैंने यह देखा नहीं था। बहुत काफी हैं लकड़ियाँ! हर चीज़ पर नजर रखनी पड़ती है। लकड़ी और आटा, और बाक़ी सब कुछ!"

"और आदमी की नहीं?"

"आदमी की बात भी बताऊँगा, घबराओ नहीं। मेरी बातें ज़रा ग़ौर से सुनो, तुम्हें कोई खराब बात नहीं सिखाऊँगा!"

अपने सीने पर हाथ मारते हुए, जो उसकी तोंद की तरह फूला हुआ और मोटा था, उसने कहा:

"मैं अन्दर से अच्छा आदमी हूं। मेरे सीने में भी दिल है। ऐसी बातें समझने के लिए अभी तुम बच्चे हो, और बेवक़ूफ़ भी। लेकिन फिर भी अच्छा है कि ये बातें तुम्हारे कान में पड़ जाएँ! और सुन मेरे भाई, आदमी जो है ना वह किसी सैनिक की वर्दी का बटन नहीं है। आदमी विविध प्रकार से चमकता है...। और हाँ यह तुम्हारा मुँह क्यों उतरा हुआ है?"

"बात दरअसल यह है कि मुझे नींद आ रही है और तुम जाने

नहीं देते । बड़ी दिलचस्प होती हैं तुम्हारी बातें भी ।"

"अगर दिलचस्प हैं तो फिर मत सोओ । जब मालिक बन जाओगे तो बहुत समय मिला करेगा सोने के लिए...।"

उसने एक ठण्डी साँस भरी और कहा:

"नहीं, तुम मालिक नहीं बनोगे कभी । तुम हरगिज़ व्यापार नहीं करोगे ।...आवश्यकता से अधिक वाचाल होना ।...बातों-बातों ही में तुम अपने आप को समाप्त कर लोगे । और यों ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा तुम्हारा सारा जीवन ।...किसी को तुमसे कोई लाभ न होगा ।"

अचानक उसने एक जोर की साँस खींचते हुए एक बहुत गंदी गाली दी । उसके चेहरे का माँस इस प्रकार थिरक रहा था जैसे फालूदे के भरे हुए प्याले को किसी ने ज़ोर से हिला दिया हो । और गुस्से की एक रौ उसके जिस्म में दौड़ गई; उसका चेहरा और गर्दन सुर्ख हो गए और आँखों की पुतलियाँ भयानक रूप धारण करके उबल पड़ीं । हमारा मालिक वासिली सेम्यानोव धीरे-धीरे और कुछ विलक्षण ढंग से हुंकार रहा था । मानो बाहर जो बर्फानी तूफान आहे भर रहा था और जिसके साथ सारी धरती बड़े दयनीय ढंग से आँसू बहाती प्रतीत हो रही थी वह उसकी नकल कर रहा हो ।

"अरे गोली मारो इसे ! काश मेरे पास अच्छे विश्वासपात्र आदमी होते ! फिर मैं तुम्हें दिखाता कि कारोबार किसे कहते हैं । सारा ज़िला, और वोल्गा का पूरा इलाक़ा दाँतों तले उँगली दबाता !...लेकिन ऐसे लोग मिलते ही नहीं । सबके सब ग़रीबी के कारण या अपनी व्यक्तिगत निर्बलता के कारण शराबी बन गए हैं ।...और अधिकारी लोग, वे मरदूद अफसर धिक है उन पर..."

उसने अपनी गठीली कलाइयों की मुठ्ठियाँ मुझ पर तान कर उँगलियाँ खोलीं और हवा में इस तरह पंजे चलाए जैसे वह किसी के बाल पकड़कर उसे नोच-खसोट रहा हो । और इसी दौरान में वह भूखे शेर

की नाईं ग़ुर्रा-ग़ुर्रा कर और मुंह से झाग छोड़ते हुए बोलता रहा:

"बचपन ही से देखना चाहिए कि किसी की पसन्द और रूचि क्या है, यह नहीं कि किसी भी पुराने काम पर अँधाधुंध लगा दिया। इसी का तो यह नतीजा है कि आज कोई व्यक्ति सौदागर है तो कल वही भिखारी बन गया। आज नानबाई है तो एक सप्ताह बाद उसे किसी के यहाँ लकड़ियाँ चीरते हुए पाया। स्कूल खोले और हर ऐरे-ग़ैरे-नत्थू-ख़ैरे को घेरकर वहाँ ले गए कि जाओ पढ़ो। हरेक को एक ही लाठी से हाँकना शुरू कर दिया।...हर आदमी को मौक़ा देना चाहिए कि वह अपना रूझान खद मालूम करे।"

उसने मेरा बाज़ू दबोच कर अपनी ओर घसीटा और बड़ी भयानक सिसियाती हुई आवाज़ में कहता रहा:

"यही तुम सोच रहे होगे और इसी की बातें कर रहे होगे कि हरेक को ऐसी ज़िंदगी बसर करने पर मजबूर किया जाता है जो उसको नापसंद हो बल्कि इस तरह की जैसी कि बसर करने का उनके अफसर हुक्म दें...। आखिर हुक्म देने का अधिकार किसको है ? उसे जो काम कर रहा हो। यानी मुझे हुक्म देने का हक़ है। मै खूब समझ सकता हूँ कि कौन किस काम के लिए उचित है।"

फिर मुझे धक्का देते हुए उसने अपनी बेबसी प्रकट करते हुए हाथ हिलाया।

"लोगों के व्यक्तिगत मामलों में अधिकारीगण यदि हस्तक्षेप करेंगे तो उससे कोई फायदा नहीं होगा। कोई काम नहीं चलेगा। सबसे अच्छा तो यह है कि सारे बखेड़े को लात मारकर जंगल में निकल जाओ। सब कुछ छोड़ कर भाग जाओ।"

अपने गोल-मटोल जिस्म को इधर-उधर झुलाते हुए उसने धीरे-धीरे और चबा-चबाकर कहना शुरू किया:

"एक आदमी तक नहीं मिलता। सब चापलूस और जी हज़ूरी

करने वाले हैं, किसी में ज़रा भी हिम्मत नहीं। जाने के लिए कहो तो वह गया और रुकने को कहो तो फौरन रुक गया। ठीक वैसे ही जैसे रंगरूट करते हैं। और जब कोई शरारत करने की सूझती है तब भी रंगरूटों की-सी हरकत करते हैं और असल में इससे मिलता-मिलाता ख़ाक नहीं। और सच कहता हूँ मैं तुमसे भगवान आसमान पर बैठा-बैठा यह सब झगड़े-टण्टे देखता रहता है और आप ही आप सोचा करता है—अरे मूर्खों! भर पाया मैं तुमसे!...दुनिया के किसी मसरफ के भी नहीं हो तुम।"

'तो तुम अपने आप को दुनिया के किसी मसरफ का नहीं समझते क्यों?"

अब भी वह पहले की तरह अपने शरीर को झुलाता रहा और फौरन जवाब न दिया।

"मेरे...मेरे बारे में कह रहे हो तुम...हर चिंगारी तो ज्वाला नहीं बन जाती, सम्भव है कि करध्दे में चमक कर रह जाये। मुझे कहते हो तुम, मैं तो चालीस से कुछ ही ऊपर हूँगा और जल्दी ही शराब की लत मेरा काम तमाम कर देगी। और शराब की लत पड़ती है जिन्दगी का उलझनो और परेशानियों से। और परेशानियाँ...अब देखो क्या मैं सिर्फ इसी काम के लायक़ हूँ? मैं तो दस हजार आदमियों के किसी कारोबार को चलाने की योग्यता रखता हूँ। और यदि ऐसा हो जाता तो मेरा सारा काम इस खूबसूरती के साथ चलता कि देश के सारे बडे-बड़े गवर्नर हक्का-बक्का रह जाते।"

उसने शान में आकर अपनी मँजरी आँख चमकाई और फुल्ली आँख मलिनता से आग के शोलों को घूरती रही। फिर उसने अपने हाथ तेजी से आगे को फेंकते हुए कहा:

"क्या महत्व है इसका मेरे लिए? इससे अधिक उपयोगी ता चूहेदान होता है। एक आधे दर्जन आदमी दो मुझे—ईमानदार आदमी।

अच्छा, चलो ईमानदार न सही चोर-चालाक तो हों। और मैं तुम्हें दिखा दूँगा कि क्या हूँ मैं !...और काम ? अरे ऐसा शानदार कारोबार कायम करूँ कि जो देखे चकरा जाए । और फिर काम भी ऐसा-वैसा नहीं, ज़ोरदार !"

थक-हारकर वह उस गंदे फर्श पर ही लेट गया । उसने एक लम्बी अँगड़ाई ली और नाक से सूँ-सूँ करते हुए, अपने पाँव तँदूर के मुँह में लटका दिये जो भड़कते-लपकते शोलों की रोशनी से दमक रहा था ।

"औरतें भी !" वह सहसा गुर्राया ।

"औरतों का क्या ज़िक्र ?"

कोई एकाध मिनट तक छत को घूरते रहने के बाद मालिक निरुत्साह व उदासी भरे स्वर में कहते हुए बैठ गया:

"काश स्त्री बस यह समझले कि पुरुष किस तरह उसके बिना एक क़दम नहीं बढ़ सकता ! कारोबार में वे कितनी बड़ी भूमिका अदा कर सकती हैं यह वे समझ ही नही सकतीं । कोई बेचारा अकेला है । यह तो भेड़िये का-सा जीवन हुआ न ! जाड़ा हो, अँधियारी रात हो, जंगल हो और बर्फ गिर रही हो पर वह एक भेड़ जरूर हजम कर जायगा ! लेकिन फिर ? क्या फायदा हुआ ? पेट भर लेने पर भी उसकी हालत वही दयनीय बनी रही । वह बैठकर मनहूस आवाज़ में रोयेगा, अपनी तक़दीर को कोसेगा !"

सर्दी से उसके शरीर में झरझरी पैदा हुई, उसने झट तँदूर के अन्दर झाँका । घूर कर मेरी ओर फिर फौरन ही मालिक की-सी रोबदार आवाज़ बना कर गुर्राया:

"कोयले झाड़ो, खड़े देख क्या रहे हो ? खड़े-खड़े कान फटफटा रहे हो ?"

तँदूर में से उठकर वह ऊपर आया और बड़ी देर तक खड़ा खिड़की से बाहर देखता और अपनी पसलियाँ खुजाता रहा । शीशों के बाहर

सफेद भँवर पटाख-पटाख की आवाज़ निकाल रहे थे। दीवार पर लगे हुए लैम्प की लौ, धुँए से भरी चिमनी में बिल्कुल ही छिप-सी गई थी। और वहाँ से लौ के भड़कने और चटखने की आवाज़ आ रही थी।

मालिक 'हे भगवान, हे भगवान !' बड़बड़ाता हुआ, भारी-भारी कदमों से बिस्कुटों की बेकरी में चला गया और जाते हुए वह ऐसा लगा मानो अंधकारपूर्ण मेहराब ने उसे निगल लिया हो। जब वह चला गया तो मैंने तँदूर में डबल रोटियाँ जमाना शुरू कीं और फिर ऊँघते-ऊँघते सो गया।

"देखो, दिन चढ़े तक मत सोते रहना।" मेरे सिर के ठीक ऊपर से किसी की जानी-पहचानी आवाज़ आई।

मालिक पीठ पर अपने हाथ बाँधे खड़ा था। उसका चेहरा तर था और कमीस सीली हुई।

"बड़ी बर्फ पड़ रही है। ढेर-के-ढेर लगे हुए हैं। सारा आँगन बर्फ से पटा पड़ा है।"

उसने अपने होंठ फैला कर लटका लिए और कुछ देर योंही चुपचाप खड़ा मेरा मुँह चिढ़ाता रहा। फिर आहिस्ता से बोला:

"एक दिन ऐसा आएगा कि ऐसी ही बर्फ-बारी पूरे हफ्ते, पूरे महीने सारे जाड़ों और सारी गर्मियों होती रहेगी।...और धरती की हर चीज़ उसके नीचे दब जायगी।...बेलचों से बर्फ कितनी ही क्यों न हटाओ कुछ भी फायदा न होगा।...हाँ हाँ, ख़याल कुछ बुरा नहीं है। तमाम बेवकूफों का एकदम खात्मा हो जायगा ...।"

झूमता-झामता वह दीवार के पास पहुँच कर कुछ हिचकिचाया और फिर अँधेरे में ग़ायब हो गया...।

हर रोज़ सुबह पौ फटते ही ताज़ा डबल रोटियों की एक टोकरी लेकर मुझे कारख़ाने की एक और दूकान पर जाना पड़ता था। और मालिक की तीनों रखेलों से मेरी जान-पहचान हो गई थी।

उनमें से एक नौजवान, घुँघरियाले बालों और भरे जिस्म वाली दर्जन थी जो एक औसत दर्जे का चुस्त व सफेद गाउन पहने रहती थी। संसार को वह अपनी मुर्दा मलिन और खाली-खाली, निराशामय आँखों से देखा करती थी। और उसके पीले चेहरे पर वैधव्य का-सा ग़म छाया रहता था। मालिक के पीठ पीछे भी वह उसका ज़िक्र बड़े डरते-डरते और दबी हुई आवाज़ में करती थी; उसका नाम और प्यार का नाम लेकर याद करती। और जो चीजे मैं लेकर जाता उन्हें वह एक अजीब घबराहट के साथ लेती और जाँचती, मानो वह कोई चोरी का माल ले रही हो।

"हाय कितनी प्यारी-प्यारी डबलरोटियाँ हैं? नन्हीं-नन्हीं!" वह बड़ी मधुर आवाज़ में कहा करती।

दूसरी एक ऊँची, साफ-सुथरी, कोई तीस वर्षीय स्त्री थी—देखने में बहुत स्वस्थ व हृष्ट-पुष्ट तथा नेक नज़र आती थी। उसकी चमकीली आँखें सदा झुकी रहती थीं और उसकी वाणी में बड़ा माधुर्य व विनम्रता थी। चीजें वसूल करते समय गिनती में वह मुझे ठगने की कोशिश किया करती थी और मुझे पूरा विश्वास था कि एक-न-एक दिन यह स्त्री अपने दुबले-पतले और प्रकट रूप में ठण्डे जिस्म पर जरूर कैदियों के धारीदार कपड़े पहनेगी। जेलखाने का सफेद रंग का लबादा उसके कंधों पर होगा और बालों पर सफ़ेद रूमाल बँधा होगा।

उन दोनों को देखकर घृणा का एक तूफान मेरे दिल में उमड़ पड़ता जो किसी हाल रोके न रुकता था। और मैं हमेशा यह कोशिश

किया करता था कि मैं तीसरी औरत के पास समान लेकर जाया करूँ। उसकी दूकान आम रास्ते से जरा ज्यादा हटकर थी। और इस अजीब औरत के पास जाने का सुखद अवसर दूसरे लड़के मुझे खुशी से दे दिया करते थे।

उसका नाम सोफिया पलाखिना था; शरीर भारी और गाल गुलाल के-से थे! और कुल मिलाकर वह एक विलक्षण-सी बेडौल औरत थी, मानो किसी ने इधर-उधर से बचे-खुचे टुकड़े जमा करके और जल्दी-जल्दी में जोड़-जाड़ कर उसे घड़ दिया हो। उसके बाल लहरिये और झबरे थे, काले भँवर जैसे, जैसे किसी यहूदन के हों और वे हमेशा उलझे रहते थे। फूले हुए गुलाबी गालों के बीच में तोते की चोंच की तरह खमदार नाक थी और आँखें भी असाधारण रूप से सुंदर थीं। गहरी, सुर्खी मायल, बादामी रंग की पुतलियाँ साफ-शफ्फाक ढेलों पर अजीब तरह से तैरती हुई नज़र आती थीं। और उनमें बच्चों की-सी मस्ती-भरी चमक थी। उसका मुँह भी बच्चों का-सा ही था—छोटा-सा और सिकुड़ा हुआ। और उसकी ठोस मोटी ठोढ़ी एक हृष्ट-पुष्ट स्त्री की बदनुमा, उभरी हुई छातियों पर धरी रहती थी। अपने फूहड़पन के कारण वह सदा एक मैला-कुचैला, बदबूदार ब्लाउज़ पहने मिलती थी जिसमें एक बटन भी न होता था। नगी टाँगें और पैर में स्लीपर। देखने में वह तीस वर्ष की स्त्री मालूम होती थी। हालाँकि वह थी केवल अठारह वर्ष की। जैसा कि उसने मुझे अपनी टूटी-फूटी रूसी भाषा में बताया था। उसे यहाँ एक अनाथ समझ कर नैरोन्स्क से लाया गया था और उसके मालिक ने उसे वेश्यालय में पहुँचा दिया था जहाँ से उसने अपना रास्ता तालाश कर लिया। वह कहा करती:

"ऐसा हुआ कि जिसकी कोख से मैं पैदा हुई थी वह मेरा माँ मर गया, और बाबा एक जर्मन औरत से सादी कर लिया और वह भी मर गया। उधर जर्मन औरत एकजर्मन मद रके साथ सादी कर लिया।

इस तरह मेरा एक और माँ और एक और बाबा हो गया। पर उन दोनों में से मेरा कोई भी नहीं। वो दोनों खूब दारू पीता था। अब मेरा उमर तेरह वर्ष का हो गया और वह जर्मन मरद ने मुझे सताना शुरू करा इस वास्ते कि मैं शुरू से मोटा थी। वह मुझे खूब मारता, पीठ पर घूसे लगाता फिर वो मेरे साथ रहने लगा और मेरा पेट रह गया। फिर तो वो सब घबरा गया और घर छोड़कर भाग गया। सब कुछ खतम हो गया और कर्जे में घर बेच दिया और मैं उस औरत के साथ जहाज में बैठकर यहाँ आया पेट गिरवाने। फिर मैं ठीक हो गई और उन लोग मुझे एक रण्डी खाने में दे दिया। वो बड़ा गंदा, भयकर...! बस मेरे को तो जहाज में अच्छा लगता था...।"

ये सब बातें उसने मुझे उस समय बताईं जब हम आपस में दोस्त बन गए थे और जिस तरह हमारी दोस्ती हुई वह भी अजीब थी।

उसका बेजोड़ चेहरा, उसकी टूटी-फूटी बातें, उसकी सुस्ती और उसका असह्य घमण्ड और बड़बड़िया बातें, मुझे ये कुछ भी पसन्द न था। दूसरी बार जब मैंने सामान उसको देदिया तो उसने क़हक़हा लगा कर कहा:

"कल मैंने मालिक को घर से निकाल दिया और उसका मुँह नोच लिया। तुमने देखा ?"

देखा तो था मैंने। एक गाल पर तीन ख़राशे पड़ी थीं और दूसरे पर दो। लेकिन उससे बात करने को मेरा जी न चाहा और मैं ख़ामोश रहा।

"बहरे हो तुम ?" उसने पूछा, "या गूंगे हो ?"

मैंने कोई जवाब न दिया। फिर उसने मेरे मुँह पर ज़ोर से फूंक मारी और कहा :

"उल्लू !"

बस उस मरतबा सिर्फ इतना ही हुआ। अगले दिन जब मैं अपनी

टोकरी पर झुका हुआ खुश्क और फफूंदी हुई रोटियाँ, जो बिकी नहीं थीं, छाँट रहा था तो वह आकर मेरी पीठ पर सवार हो गई। उसने अपने छोटे-छोटे नर्म बाजुओं से मेरी गर्दन कस ली और चिल्लाई:

"चड्डी दो, मुझे चड्डी !"

मुझे बड़ा तैश आया और मैंने उससे कहा, "मुझे छोड़ दो !" लेकिन वह और भी बोझ डाल कर लटक गई और कहने लगी:

"चलो-चलो मुझे पीठ पर लेकर चलो !"

"हट जाओ वरना मैं तुम्हें पटखी दे दूंगा।"

'नहीं !" उसने बहस शुरू की, तुम मुझे नहीं पटख सकते। मैं नारी हूँ और तुम्हें एक नारी की बात माननी चाहिए। चलो !"

उसके चिकटे हुए बालों में से तेल की ऐसी बदबू आ रही थी कि दिमाग़ फटा जाता था और वह खुद भी उस तेज़ और चिकटी हुई बू में बसी हुई थी। जैसे कोई पुरानी प्रिंटिंग मशीन हो।

'मैंने एक झटका देकर उसे अपने सिर के ऊपर से इस तरह उछाला कि उसके पाँव दीवार से जाकर टकराए। उसने बच्चों की तरह आहिस्ता-आहिस्ता बिसूर कर रोना और कराहना शुरू कर दिया।

मुझे उस पर तरस भी आया और अपनी उस हरकत पर शर्म भी। फर्श पर मेरी ओर पीठ किए बैठी झूम-झूमकर वह अपनी चिकनी-चिकनी खुली हुई टाँगें अपने दामन में छिपा रही थी और उसकी नग्नता में कुछ ऐसी बेचारगी थी जो दिल पर असर करती थी। विशेषतया अपने नंगे पाँव के अँगूठों को जिस तरह बल दे रही थी क्योंकि गिरते समय उसके पाँव के स्लीपर फिसल कर गिर पड़े थे।

"मैंने पहले ही कह दिया था।" मैं गडबड़ा कर बड़बड़ाया और उसे उठाकर खड़ा करने लगा। उसने मुंह बनाया और कराहते हुए कहा:

"हाय, हाय...गुस्ताख लड़के !...

और अचानक फर्श पर ज़ोर से पाँव पटखते हुए उसने खुशमिज़ाजी से क़हक़हा लगाते हुए कहा :

"जा जहन्नुम में जा ! चल भाग यहाँ से ।"

मैं दौड़कर बाहर गली में आगया । मुझे बड़ी शर्मिन्दगी थी और मैं अपने आपको बुरी तरह कोस रहा था । छतों के ऊपर रात का जमा हुआ मटियाला कुहरा जो बाक़ी बचा था, वह भी पिघल गया था और धुँदली सुबह रेंगती हुई शहर पर छा रही थी । लेकिन सड़क की लालटेनों की पीली रोशनियाँ अभी गुल नहीं हुई थीं और सन्नाटे पर पहरा दे रही थीं ।

"सुनो !" लड़की ने सड़क की तरफ का दरवाज़ा खोलकर मुझे आवाज़ देते हुए कहा, "डरना नहीं, मैं मालिक से कुछ भी नहीं कहूँगी !"

दो दिन बाद उसके यहाँ सामान ले जाने का मुझे फिर मौक़ा मिला । उसने बड़ी सुखद मुस्कान के साथ मेरा स्वागत किया, फिर एक दम किसी सोच में पड़ गई और पूछा:

"तुम्हें पढ़ना-लिखना आता है क्या ?"

और नक़दी रखने की दराज़ खोलकर उसने उसमें से एक खूबसूरत बटुआ निकाला और कागज़ का एक पुर्जा खींच लिया ।

"इसे पढ़ो तो ज़रा !"

मैंने कविता के दो पद पढ़े जो बड़े सुन्दर लेखन में थे :

चंदा खा जाने में पिताजी हैं बड़े बदनाम
कम-से-कम भी वह चुरा बैठे हैं शायद एक लाख

"उफ कैसा जानवर है !" वह चिल्लाई और काग़ज़ का पुर्जा उसने मेरे हाथ से छीन लिया । फ़िर जल्दी-जल्दी और गुस्से में कहने लगी:

"एक उल्लू के पट्ठे ने लिखकर दी है यह कविता । वह है तो

बड़ा उद्दण्ड लेकिन अभी विद्यार्थी ही है। मुझे विद्यार्थियों से बड़ी दिलचस्पी है। वे भी फौजी अफसरों की तरह होते हैं और वह तो मुझसे इश्क लड़ा रहा है। अपने बाप के बारे में ऐसी ही बातें किया करता है। उसका बाप कोई बड़ा आदमी है। बड़ा-बूढ़ा है, सीने पर तमगे लगाए कुत्ते को साथ लिए फिरा करता है। हाय हाय, मुझे कितनी घृणा होती है जब कोई बुड्ढा आदमी कुत्ते साथ लिए फिरे। कोई और नहीं मिलता उन्हें साथ ले जाने को ? इधर उसका बेटा उसे बुरा-भला कहता है, चोर कहता है, यहाँ तक कि लिख भी दिया—यहाँ !"

"तुम्हें उनकी क्या परवाह ?"

"ओह !" उसने कहा और उसकी आँखें दुःखी होकर फटी-की-फटी रह गईं।" अपने बाप को बुरा-भला न कहना चाहिए। और उसे खुद को तो देखो दुश्चरित्र स्त्रियों के साथ चाय पीने जाता है।"

"कौन है वह ?"

"क्यों मैं जो हूँ !" उसने अचम्भे और क्रोध मिश्रित आवाज़ में झल्ला कर कहा। "कितने बुद्धू हो तुम ?"

एक विचित्र प्रकार की कहना चाहिए जबानी जान-पहचान हममें पैदा हो गई थी। हम हर मसले पर बातचीत करते थे। लेकिन यह बात संदिग्ध है कि हम एक-दूसरे के स्वभाव को बिल्कुल समझ सके हों। कभी-कभी तो वह बड़ी गम्भीरता के साथ लड़कियों की बातें बड़े राज़दाराना अंदाज़ में मुझे बताती और आपीआप मेरी निगाहें झुक जातीं और मैं सोचने लगता:

"कहीं वह मुझे औरत तो नहीं समझती ?"

लेकिन असल में यह बात नहीं थी। जबसे हमारी दोस्ती हुई थी वह मेरे सामने मैली-कुचैली पोशाक में कभी न आती थी। उसके ब्लाउज़ के बटन लगे हुए होते, बगलों के नीचे फटी हुई आस्तीनों की

सिलाई की हुई होती थी। यहाँ तक कि वह लम्बे मोजे भी पहन लिया करती थी। मेरे सामने वह दयापूर्ण मुस्कान अपने चेहरे पर बिखेरे आती और ऐलान करती:

"मैंने समावार तैयार कर दिया है।"

अल्मारी के पीछे हम चाय पिया करते थे जहाँ उसकी एक छोटी चारपाई बिछी हुई होती थी। दो कुर्सियाँ, एक मेज़ और कपड़ा रखने की एक पुरानी बदनुमा अल्मारी जिसके नीचे की दराज़ बंद ही न होती थी। आते-जाते सोफिया की पिंडलियाँ उस दराज़ से अक्सर टकराती रहती थीं। और जब कहीं उसे वह जोर से लग जाती—और खाल छिल जाती—तो वह पाँव को सहला-सहलाकर, मुँह बनाकर बुरा-भला कहने लगती थी:

"तोदू कहीं की, मूर्खा! ऐसी ही जैसे सेम्योनोव है। थलथल, घृणित और मूर्ख!"

"तो क्या तुम्हारे ख्याल में मालिक मूर्ख है।"

उसने आश्चर्य प्रकट करते हुए अपने कंधे उठाए और उसके बड़े-बड़े कान भी साथ ही थिरकते हुए उठ गये।

"निश्चित रूप से।"

"क्यों?"

"इसलिए कि वह है!"

"नहीं, लेकिन क्यों?"

अब चूंकि वह जवाब न दे सकी तो उसे गुस्सा आगया:

"क्यों, क्यों? इसलिए कि वह बेवकूफ़ है।...हर तरफ से बेवकूफ़ है!"

लेकिन एक दिन उसने मुझे समझाया और समझाते हुए कुछ नाराज़-सी हो गई:

"क्या तुम समझते हो, वह मेरे साथ रहता है? बस दो बार वह

मेरे साथ रहा। उन दिनों में वेश्यागृह में थी। लेकिन यहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। मैं उसके घुटनों तक पर बैठती थी और वह मुझसे थोड़ी देर तो छेड़छाड़ करता और फिर कहता, 'भाग जाओ!' वह तो उन दोनों के साथ रहता है। मुझ से न मालूम वह चाहता क्या है? उस दूकान से कोई आमदनी नहीं होती, मैं अच्छी दूकानदार भी नहीं और न ही मुझे यह पसन्द है। न जाने क्या मसलेहत है? मैं पूछ लेती हूँ कभी तो वह चीख पड़ता है, 'इससे तुम्हें कोई मतलब नहीं!' ऐसी-ऐसी हज़ारों बेवकूफियाँ गिन लो!"

आँखें बन्द किये हुए उसने अपना सिर हिलाया और उसका चेहरा बिल्कुल ख़ाली-ख़ाली-सा लगा जैसे कि लाश का।

"उन दोनों को जानती हो तुम?"

"क्यों नहीं। जब वह पिये हुए होता है तो उनमें से किसी एक को मेरे यहाँ लाता है और पागलों की नाईं चीखता है, 'लगे एक इसके लाल-लाल मुँह पर!' छोटी वाली को तो मैं हाथ नहीं लगाती, तरस आता है उस पर। वह हमेशा थर-थर काँपने लगती है। लेकिन वह दूसरी—उसे एक बार मैंने मारा था। मैं खुद भी नशे में थी और मैंने उसे मारा। मुझे फूटी आँख नहीं भाती वह! और फिर मेरी तबियत बड़ी खराब हो गई। और मैंने उसके भी खूब निहट्टे मारे!"

अपने विचारों में वह गुम हो गई, मूर्तिवत अकड़ी हुई बैठी रही। फिर उसने धीरे–धीरे कहना शुरू किया :

"उसे मारने का मुझे ज़रा भी अफसोस नहीं...सूअर कहीं का! लेकिन फिर भी...वह धनवान है।...अच्छा होता कि वह भिखारी या बीमार होता। मैं कहती हूँ उससे, 'अरे मूर्ख! तुम इस तरह कैसे रह सकते हो? किसी–न–किसी तरह अच्छी ज़िन्दगी बसर करो।...अब क्यों नहीं तुम किसी अच्छी औरत से शादी कर लेते कि बच्चे हों...।"

"लेकिन वह तो शादीशुदा है।"

सोफिया ने कंधे सिकोड़ कर सादगी से कहा :

"उसने क्या किसी को ज़हर देकर नहीं मारा ? अपनी पत्नी का भी वह ज़हर दे सकता है...अब तो वह बेकार सी बुढ़िया है न !... वह तो बिल्कुल पागल आदमी है।...न वह कुछ चाहता ही है...।"

मैंने उसे समझाना चाहा कि किसी को ज़हर देना अच्छी बात नहीं, लेकिन उसने बड़े इत्मीनान और सुकून के साथ जवाब दिया :

"मगर यह तो होता ही रहता है।"

उसके कमरे की खिड़की में से गुलमेंहदी का पौधा दिखाई देता था। खूब फूल आये हुए थे। एक दिन उसने बड़े गर्व से पूछा:

"कितना सुन्दर है यह सूरजमुखी ?"

"हाँ, खासा है। लेकिन यह सूरजमुखी तो नहीं है।"

उसने अपना सिर हिलाकर बहुत ज़ोर से इन्कार कर दिया !

"नहीं, नहीं यह ठीक नहीं। मामूली फूल तो वही होता है जो छींट पर छपा होता है। लेकिन सूरजमुखी तो देवता का फूल होता है। सूर्य देवता का ! ये सब सूरजमुखी के फूल होते हैं। फर्क सिर्फ रंगों का होता है।—गुलाबी, नीले, लाल...सब रंगों की मुझे पहचान है।"

...इस प्रकार के दिखावे भरे, सादे लेकिन असल में अजीब व बहुत ही गडमड लोगों के साथ जीवन बिताना मुझे दिन-ब-दिन असह्य मालूम होने लगा था। वास्तविकता एक भयानक स्वप्न बन कर रह गई थी। किताबों में जो बातें पढ़ी थीं उनकी आब व ताब व उनकी सुन्दरता में और भी वृद्धि हो गई थी। और वह सदियों के तारों की तरह आकाश में दूर से दूरतर होती जा रही थीं।

एक दिन मालिक ने मेरी आँखों में अपनी मँजरी आँखलाडकर जो उस समय तपे हुए ताँबे की तरह धुंधली हो रही थी, मुझसे बड़े उदास स्वर में पूछा :

"मैंने सुना है कि आजकल तुम छोटी दूकान में जाकर चाय पिया करते हो ?"

"हाँ ।"

"मेरा भी यही ख्याल था । सँभल जाओ तो बेहतर है ।"

वह मेरे पास बैठ गया और कुछ बेखुदी के आलम में बातें शुरू कर दीं । बोलते समय उसकी आँखें पुचकारी हुई बिल्ली की तरह जल्दी–जल्दी झपक रही थीं और वह होंठों को इस तरह चाट रहा था मानो एक–एक शब्द का मजा ले रहा हो ।

"लड़की क्या है टमाटर है क्यों ? मुझसे पूछो, मैं बताऊँ । वास्तव में वह भगवान की पथभ्रष्ट सृष्टि में से नहीं है ।...जैसी बातें वह मुझसे करती है कोई पादरी भी क्या करेगा । हाँ, हाँ जान–बूझ कर, उसकी परीक्षा लेने के लिए मैं उसे धमकाता हूँ, डराता हूँ ।...अरी पगली, मैं तुझ लातें मारकर निकाल दूंगा । लेकिन वह ज़रा बराबर भी तो परवाह नहीं करती, सच्ची बात कहने में ज़रा भी तो नहीं हिचकिचाती ।"

"सच्चाई की तुम्हें क्या ज़रूरत है ?"

"बिना सत्य के जीवन अजीर्ण हो जाता है ।" उसने विस्मयपूर्ण सादगी से कहा ।

फिर उसने एक गहरी साँस ली और मुझे घूर कर देखा । चिड़-चिड़े अन्दाज़ में मानो मुझ से क्रुद्ध होकर बोला :

"तुम शायद सोचते होगे जिन्दगी बड़ी सुखद चीज़ है ।"

"नहीं तो, और विशेषकर तुम्हारे आसपास ।"

"तुम्हारे आस-पास ! उसने मुँह चिढ़ाया और फिर देर तक मुँह

फुलाये खामोश बैठा रहा। गर्दन का ढीला ढाला मांस इस तरह लटक रहा था जैसे गर्मी के मारे हाँपते हुए कुत्ते के जबड़े। कान झुक गये थे और निचला होंठ बेजान होकर छीछड़े की तरह लटक पड़ा था। आग के शोलों के प्रतिबिम्ब ने उसके दाँतों में सुनहरी चमक पैदा कर दी थी।

"मूर्ख होते हैं वे जिन्हें जीवन सुखद नज़र आता है। होशियार आदमी तो वोदका पीता है। उसको तो आस्तीनें चढ़ा कर जिन्दगी से टक्कर लेना होती है। मुझे देखो! कभी-कभी तो मैं रात भर पड़ा रहता हूँ। सारी रात पड़ा रहता हूँ लेकिन कमबख्त एक जूँ तक नहीं काटती मुझे! जब मैं मज़दूर था तो जुएँ भी बड़े शौक से मुझे काटा करती थीं। दौलत की निशानी होती है यह हमेशा! जैसे ही मैं साफ-सुथरा रहने लगा कि उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया।...हर चीज़ मेरा साथ छोड़ रही है। बस केवल घटिया, सस्ती चीज़ें शेष हैं—औरतें! और वह तो बहुत ही दुखदाई और दुश्वार होती हैं ...।"

"और क्या तुम वहीं सत्य की खोज कर रहे हो?"

उसने झल्लाकर जवाब दिया :

"तुम समझते हो कि क्या वे तुम लोगों से कम चलती हुई हैं? तुम लोगों से? कुज़िन ही को देखो, भगवान से डरता है और सच बातों की ख़बर देना उसको अच्छा लगता है। सोचता है कि शायद मैं उसका पारिश्रमिक दूंगा। मैं तो खुद ही सड़ी-बुसी चीज़ें अच्छे दामों बेच डालता हूं, समझे?"

फिर उसने आग की ओर ग्लानिपूर्वक संकेत किया और बोला :

"येगोर तो कुल्हाड़ी है। उल्लू की तरह बेवकूफ़! तुम भी टाँय-टाँय करते फिरते हो और हर घड़ी इस घात में रहते हो कि ज़रा कोई मौक़ा मिले और अपने किसी साथी की गर्दन पर सवार हुए। तुम चाहते हो सब उसी तरह रहें-सहें जिस तरह तुम कहो। और मैं यह

नहीं चाहता । खुद भगवान ने मुझे बीच मँझधार में छोड़ दिया और मानो कह दिया, जाओ मिस्टर सेम्योनोव, जैसे चाहो जिन्दगी बसर करो, मैं दखल नहीं देता । मेरी बला से जहन्नुम में जाओ तुम !"

उसका सँवलाया हुआ सुर्ख चेहरा भड़कते हुए शोलों की लपेट में दमक रहा था और पसीने में तर हो गया था । उसकी आँखें ठहर गई थीं । जैसे नींद आ गई हो और ज़बान में लड़खड़ाहट आ गई थी ।

"लेकिन सोवका तो मुँह पर कहती है–तुम आवारा की-सी जिन्दगी बसर कर रहे हो ! आवारा की-सी ? हाँ और नहीं तो क्या ! तुम कोई भेड़िये या सुअर नहीं हो ।...तो फिर इन्सान जिये किस तरह मूर्खा ? मुझे क्या पता ? वह कहती है तुम खुद ही मालूम करो । तुम काफी होशियार हो, अब बनो मत कि मुझे मालूम नहीं—लो यह है सच्चाई ! जिन्दगी इस तरह बसर नहीं की जाती । मुझे मालूम नहीं कि फिर दूसरा कौन-सा रास्ता है ? यह है बिल्कुल सच ! और तुम, तुम...।"

उसने एक मोटी–सी गंदी गाली दी और फिर और भी ज्यादा तैश में आकर कहने लगा:

"मैं उसे सोवा* कहा करता हूँ । दिन के समय तो वह बिल्कुल अंधी मूर्खा-सी लगती है हालाँकि रात के समय भी वह होती मूर्ख ही है ।...लेकिन रात के समय कम-से–कम वह...चंचल और ठीक तो होती है ।"

उसके स्वर में स्नेह था और आवाज में वही मिठास मालूम होता था जो मैंने पहली बार सुअर के बच्चों से उसे बातें करते समय पाया था ।

"तीन रख छोड़ी हैं मैंने ।" अब फिर उसने अपनी गाथा शुरू की । "एक तो गोश्त–पोस्त के आनन्द के लिए—नादिया घुंघराले बालों वाली । शोखी और चंचलता तो उसमें कूट–कूट कर भरी है ।

---

* रूसी भाषा में सोवा (सोवका का संक्षिप्त) का अर्थ उल्लू होता है ।

देखने में यों लगता है जैसे वह निहायत ही डरपोक है लेकिन दरअसल है वह बिल्कुल निर्भीक। न तो भय को वह जाने कि किस चिड़िया का नाम है और न यह जाने कि अन्तःकरण क्या बला है।—बस लोभ-लिप्सा उसका अन्तःकरण है। जोंक है वह जोंक! कोई भिक्षु या साधु-संत उसे देखे तो दंग रह जाए। दूसरा कुरोचकीना है मानसिक व्यभिचार के लिए। इसके अलावा और कोई नाम उसके लिए जँचता ही नहीं। उसका नाम तो है ग्लाशा, ग्लाफिरा; लेकिन कहना उसको पड़ेगा कुरोचकीना ही।.....बस यही उसकी विशेषता है। उसे सताने में मुझे बड़ा मजा आता है। मैं कहता हूँ करे जाओ पूजा, खूब करलो जलाए जाओ दिये इन मूर्तियों पर लेकिन भूत तुम्हारी ही ताक में बैठे हैं। भूतों से उसे बड़ा डर लगता है, घिग्घी बँध जाती है उसकी डर के मारे। पर खोटे सिक्के खूब चलाती है चुपचाप। अभी कल ही की बात है एक खोटा सिक्का उसने मुझे चेंप दिया था—तीन रुबल का था वह और उससे पहले एक पाँच रुबल वाला थमा दिया था उसने। मैं पूछता हूँ कहाँ से आते हैं तुम्हारे पास? तो कहती है कोई आँखों में धूल झोंक कर चलता बना। झूठी है वह। जालसाज़ों की किसी टोली से मिली-भगत है मालूम होता है। शायद कमीशन तय कर लिया होगा। लेकिन भई है बड़ी घुन्नी। जब तक उसे गुस्सा न दिलादो, उसके साथ मज़ा नहीं आता। फिर तो उसका गरम होना देखो। कभी-कभी तो मुझे भी फुरहरी आ जाती है। उसका बस चले तो आदमी का गला घोंट कर दम निकाल दे। एक तकिये से दम घोंटस कती है, हाँ हाँ, सिर्फ एक तकिये से। और जब काम तमाम कर चुकेगी तो दुआ माँगेगी। हे भगवान मुझे क्षमा करदो। तुम बड़े दयाल हो भगवन। हाँ हाँ, वह ऐसा ही करती है।'.

शोले और भी ज्यादा तेज़ हो गये थे, गर्मी भी खूब बढ़ गई थी। आग की रोशनी में उसकी बदनुमा और बदसूरत शक्ल और भी साफ नजर आने लगी थी जो घृणापूर्ण होने के साथ दुखप्रद भी थी। लपट से

बचने के लिए उसने बलखाने शुरू कर दिए थे, पसीना बह निकला था और साँस के साथ सड़ी हुई, चिकटी बदबू निकल रही थी जैसी कि गर्मियों में ग़ंदे नालों से भभक उठती है । जी चाहता था कि खूब ही तो उसे सुनाई जाएँ, मरम्मत की जाएँ, गुस्सा दिलाया जाय ताकि यह शख्स किसी और अंदाज़ में बातचीत करे । लेकिन इसके साथ ही वह उन घृणित बातो में जादूभरी दिलचस्पी लेने पर मजबूर भी कर देता । उन बातों से गंदगी टपकी पड़ती थी । लेकिन उनमें एक दर्द और एक प्रकार की चुभन का भी एहसास पाया जाता था ।...

"झूठ सब बोलते हैं—मूर्ख अपनी मूर्खतावश और चालाक अपनी मक्कारी के लिए । लेकिन सोवका सच बोलती है.....सच बोलती है...अपने लिए नहीं...अपनी आत्मा के वहिष्कार के लिए भी नहीं... आत्मा, छिः बकवास ! बस सच बोलती है, इसलिए कि वह सच बोलना चाहती है । मैंने सुना था कि विद्यार्थी सत्य की खोज करते हैं। इसलिए मैंने शराबखाने झाँके जहाँ वे मस्त होकर मदिरा-पान करते हैं । कुछ भी नहीं । ये सब मनगढ़न्त क़िस्से हैं । वे सब शराबी होते हैं, हाँ हाँ शराबी ।..."

अब वह बड़बड़ाने लगा था । मेरी मौजूदगी का उसे ज़रा भी भान न था। मानो मैं उसके पास बैठा हुआ ही नहीं हूँ ।

"कुछ लोगों के लिए सच्चाई मानो...मानो ऐसी होती है जैसे कि वह किसी ऊँचे घराने की सुन्दरी के प्रेम में बँध गया हो। एक ही नज़र में ज़िन्दगी भर के लिए उसी का होकर रह गया हो...और उस तक पहुँचा न जा सके...जैसे उसे कहीं सपने में देखा हो ।"

कोई कह नहीं सकता था कि मालिक नशे में है या होश में। शायद तबियत खराब हो । उसकी जबान और होंठ सुस्त थे जैसे कि वह उन संगीन शब्दों को सीधा करने का यत्न कर रहा हो । जो उसका दिमाग़ गढ़ रहा था । उस वक्त वह कुछ घृणित जान पड़ता था और मैं ऊँघ-

ऊँघ कर शोलों को घूर रहा था । अब उसकी भर्राई हुई आवाज़ मुझे सुनाई नहीं दे रही थी !

लकड़ियाँ गीली थीं और तड़ख़ रही थीं, सनसना कर झाग उगल रही थीं, नीला और बोझिल धुआँ लगातार निकल रहा था। हल्के लाल रंग की लपटें लकड़ी के गुद्दों के इर्द-गिर्द लिपट गई थीं और भयावह आकृति बना कर भड़क रही थीं, साँप की ज़बान की तरह नीची मेहराब की ईंटें चाट रही थीं। और तँदूर के मुँह की तरफ मुड़े हुए और और दबे हुए थे और धुआँ घनघोर घटा की तरह—काला और बोझिल धुआँ—उन्हें छिपाये ले रहा था ।

"बड़बड़िये !"

"जी ?'

"जानते हो मुझे तुम्हारी किस बात पर आश्चर्य हुआ ?'

"बताया तो था तुमने एक बार ।"

"हाँ ।',

अब फिर वह खामोश हो गया और फिर एक भिखमंगे के-से शिकायत भरे स्वर में कहा:

"तुममें इससे क्या कि आया मुझे सर्दी लग जाती और मैं मरजाता, या न मरता । तुमने तो यों ही कह दिया था...बिना सोचे-समझे । महज़ मज़ाक के लिए ?"

"तुम अब जाकर सोजाओ तो अच्छा है क्यों ?"

चुपके-चुपके मुस्कराते हुए उसने अपना सिर हिलाया और इसी शिकायती अँदाज़ से बोला:

"लो, और सुनो ! मैंने तो इसके साथ भलाई की और यह है कि मुझे ही भगा रहा है ।"

यह पहला मौका था कि हमारे मालिक ने सहानुभूति प्रकट की थी और मैं उसकी हमदर्दी की सच्चाई या बनावट की परीक्षा करना

चाहता था।

मैंने कंटकपूर्ण मार्ग पर चलते हुए कह डाला :

"क्यों न नन्हें याश्का की कुछ मदद कर दो।"

मालिक ने भारीपन से अपने कंधे सिकोड़े और खामोश हो रहा।

इस बातचीत से दो-तीन दिन पहले झुनझुना बेकरी में गिर पड़ा था। उसके सिर के बाल सब जल गए थे और गंजी टाँट निकल आई थी। आँखों की तरह उसका सिर भी बिल्कुल शफ्फाफ हो गया था। अस्पताल में रहने से उसकी आँखें पहले से भी चमकीली और साफ हो गई थीं। उसका दाग़दार नन्हाँ-सा चेहरा दुबला गया था। नाक और भी ज्यादा टेढ़ी और ऊपर को उठ गई थी। बच्चे के मुँह पर कुछ स्वप्निल मुस्कान खेलने लगी थी। कारखाने में वह कुछ अजीब चाल से चल रहा था मानो अभी लड़खड़ा कर गिरने वाला हो। उसको डर लगा रहता था कि कहीं क़मीस मैली न हो जाए। और अपने हाथ साफ देखकर उसको शायद उलझन हो रही थी क्योंकि वह अपनी नई पतलून की जेबों में हर वक्त ठूँसे रहता।

"यह सिंगार तुम्हारा किसने कर दिया?" नानबाइयों ने पूछा।

"मिथ जूलिया ने।" उसने अपनी नन्हीं-सी मद्धम आवाज़ में जवाब दिया और फिर चलते-चलते रुककर और अपना बायाँ हाथ जेब से निकाल कर हवा में नचाते हुए कहा:

"डाक्टरनी हैं वह! कर्नल की बेटी। तुर्कों ने उसके पिता की टाँगें काट डालीं—घुटनों तक, मैंने भी उनको देखा है। थाफ गंजी टाँट है उनकी। और वे कहते रहते हैं—कुछ नहीं, कुछ नहीं। उससे क्या होता है।"

"वाह वाह! भाइयो, अस्पताल में तो बड़ा मज़ा है। और पूछो भई और कुछ पूछो।"

"दाहिने हाथ में तुम्हारे क्या है?"

"कुछ नहीं।" उसने झट से ज़वाब दिया और बेकसी के आलम में उसकी निगाहें चारों तरफ जा रही थीं।

"झूठ ! लाओ, लाओ हमें भी तो दिखाओ।"

बेचारा घबरा गया। उसने अपना हाथ जेब में और भी अन्दर ठूँस लिया। और खुद भी दुहरा हो गया। अब तो लोगों को और भी उत्सुकता हुई और जेबों की तलाशी लेने का फैसला हुआ। सबने लपक कर उसे दबोच लिया और थोड़ी देर की कशमकश के बाद उसकी जेब से बीस कोपेक का एक नया और चमकदार सिक्का तथा एक मूर्ति 'माँ' व 'बच्चे' की निकली। सिक्का तो फौरन ही याश्का को वापस कर दिया गया और मूर्ति हाथों-हाथ घूमने लगी। पहले तो बच्चा अपना नन्हाँ हाथ फैलाए और खिंची हुई मुस्कान के साथ मूर्ति वापस माँगता रहा। फिर उसे गुस्सा आ गया और फिर रफ्ता-रफ्ता वह भी जाता रहा। जब सैनिक मिलोब ने मूर्ति वापस की तो याश्का उसे लापरवाही से जेब में डालकर कहीं गायब हो गया। रात को खाने के बाद वह उदास व मलिन चेहरा लिए जगह-जगह गीले आटे के लोंदे चिपकाये और खुश्क आटे का उबटन मले मेरे पास आया। लेकिन उसकी वह पुरानी जिंदादिली कहीं नज़र न आई।

"अच्छा तो लाओ देखें क्या भेंट लाये हो ?"

उसकी नीली आँखें कहीं और देख रही थीं।

"मेरे पास नहीं है !"

"फिर कहाँ गया ?"

"खो गया।"

"सचमुच खो गया क्या ?"

याश्का ने एक ठण्डी साँस ली।

"वह कैसे ?"

"फेंक दिया।" उसने मरी हुई आवाज़ में कहा।

मेरी शक्ल देखकर वह समझ गया कि मुझे विश्वास नहीं हुआ, इसलिए उसने अपने सीने पर क्रास बनाते हुए कहा:

"भगवान मेरा साक्षी है। तुमसे मैं झूठ हरगिज़ नहीं बोलूंगा। उसे मैंने आग में फेंक दिया। पहले तो वह लाख की तरह पकने लगा, फिर जलकर खाक होगया।"

फिर वह एकदम सिसकियाँ ले-लेकर रोने लगा और मेरे दामन में मुँह छिपाकर और हिचकियाँ ले-लेकर कहने लगा:

"थूअर कहीं का, नीच!...हमेशा हर चीज़ झपट लेता है...वह... फौजी ने ऐसी उँगलियाँ गड़ाईं कि उथकी एक किरच उखड़ गई।... गल जायें उँगलियाँ इथकी। मिथ जूलिया ने जब वह मूर्ति मुझे दी थी ता पहले उथको चूमा था और बाद में मुझे भी कहा था, "लो, यह तुम्हारी है। यह तुम्हारे...काम...आएगी।"

मारे सिसकियों के उसका जी हलकान हो गया और बड़ी देर तक मैं उसे चुप न कर सका। मैं नहीं चाहता था कि बेकरी के नानबाई उसको रोता देखलें और उसके दर्दनाक माने समझ जाएँ।

अचानक मालिक ने पूछा, "वह याश्का वाली क्या बात थी?"

"वह बहुत कमज़ोर है और बेकरी में तो वह वैसे भी काम करने योग्य नहीं है। उसे तो कहीं दूकान पर काम करने को लगा दिया जाए।"

मालिक किसी सोच में पड़ गया और होंठ चबाते हुए बड़ी गम्भीरता के साथ बोला:

"अगर कमज़ोर है तो दूकान पर भी किस काम का? वहाँ ठण्ड है, उसे सर्दी लग जायगी और गारास्का भी उससे दुर्व्यवहार करेगी। सोवका वाली दूकान पर भेज दो तो अच्छा है। वह है भी फूहड़। सारी दूकान धूल में अटी रहती है। वहाँ जाकर वह उसका हाथ बटाए।... यह कोई सख्त काम भी नहीं है।"

तँदूर के अन्दर अँगारों के सुनहरी ढेर पर नजर डालकर उसने गढ़े में से पाँव निकाल लिये ।

"राख झाड़ो, बस अब वक्त हो गया ।"

मैं लम्बी छड़ तँदूर में डाल कर राख झाड़ने लगा और उसने धीरे-धीरे जैसे ख्वाब में बड़बड़ाते हूए कहा:

तुम भी हो बुद्धू ! देखो तो सही तक़दीर खड़ी तुम्हारी राह देख रही है । जो चाहे बन जाओ । और तुम हो कि...उहँ...हमारी बला से, अजीब आदमी है ।"

पुराने, टूटे-फूटे मकानों के गहरे सायों वाली संकीर्ण एवं अँधियारी गलियों में मार्च का सूर्य बड़ी सतर्कता के साथ जरा नाक-भौं चढ़ाकर झाँक रहा था । सुबह सवेरे से रात गये तक शहर के बीचों बीच अँधियारे तहख़ानों में कैद रहने के कारण हमें वसंतागमन का अनुभव सील पैदा हो जाने से होता, जो दिन-ब-दिन बढ़ती चली जाती ।

दोपहर के बाद कोई बीस मिनट के लिए सूर्य की एक किरण कारखाने की आखिरी खिड़की में से अन्दर झाँकती और मुद्दतों का मैला व गंदा शीशा कुछ देर के लिए खूबसूरत और चमकदार दिखाई देने लगता । छोटे-से रोशनदान में से बिना पहियों की गाड़ी चलाने वाले घोड़ों की टापों की आवाज सुनाई देने लगती क्योंकि अब बर्फ पिघलने से सड़क के पत्थर उभर आते । बाजार का कोलाहल भी अब पहले से तेज़ और ज्यादा सुनाई देता ।

बिस्कुटों वाली बेकरी में गानों की आवाज लगातार गूंजतीं रहती ।

लेकिन अब उनमें जाड़ों की-सी न रही थी । समूहगान मंद पड़ गये, हर व्यक्ति अपने पसन्द के गीत अपनी-अपनी पसन्द की लय में गाने लगता । बार-बार धुनें व तर्जें बदली जातीं, मानो बसन्त के उस दिन की आत्मा के साथ एक सुर होने वाला कोई गीत ही न मिल रहा हो।

छोड़कर मुझको विरह में प्रियतमे

तंदूर के पास से बंजारे ने गाना शुरू किया और वानुक ने अगली पंक्ति मानो बड़े यत्न से पूरी की:

मेरे चरणों में पड़ा है मेरा यह निराश जीवन

गीत उसने अधूरा ही छोड़ दिया और जिस सुर में गा रहा था उसी सुर में बोला:

"दस दिन और हैं फिर हमारे गाँव में लोग हल चलाना शुरू कर देंगे।"

शातुनोव अभी आटा गूँधकर उठा था । उसके नग्न शरीर पर पसीना चमक रहा था, और अधखुले नेत्रों से खिड़की को निर्निमेष देखते हुए वह अपने बालों को छाल के एक फीते से बाँध रहा था ।

उसकी उदास वाणी बड़े मन्द स्वर में गरजी:

भगवान के ये नन्हें, ये कोमल यात्री अग्रसर हैं,
बोलते कुछ भी नहीं चुपचाप चले जा रहे हैं ।

आर्तेम एक कोने में बैठा फटी हुई बोरियों की मरम्मत कर रहा था और सुरिकोव की एक कविता जो उसे कंठाग्र थी उसने जनानी आवाज में खाँस-खाँसकर गाता जारहा था:

तू हमारे अभिन्न हृदय मित्र
लकड़ी के संदूक में पड़ा चुपचाप
सिर से पैर तक कफन में ढंका
पीला चेहरा लिए पड़ा बेहोश

"हकथू !" कुजिन ने उसकी तरफ थूकते हुए कहा, "क्या निकाला है गीत

क़ब्र में से खोदकर...उल्लूकहीं का, गधा... अरे शैतानो ! हज़ार बार तुमसे कहा...।"

"हे भगवान !" बंजारा गाना अधूरा छोड़ कर चीखा। मज़ा आने वाला है इस दुनिया में अब !"

अपने पाँव से ताल देते हुए उसने ऊँचे सुरों में गीत शुरू किया :

एक मदमस्त सुन्दरी आरही है
दूर ही से मुस्काती फूल बरसाती हुई
यह वही गुड़िया तो है जिस पर
मेरा सर्वस्व न्यौछावर है आज

अगली पंक्ति उलानोव गाता है:

है वही गंभीर मेरी प्यारी ऐन
जिसने सारे कबीले को वश में किया
जब यहाँ आता है मौसम वसंत का
वह हरेक चीज़ में जादू भर देती है

इन क्रमहीन गीतों और छीना-झपटी की बातचीत में वसंत की मस्तियों और नवीनता की तड़पती हुई उम्मीदों का अनुभव होता। भाँति-भाँति के गीतों और तरह-तरह के गानों का अन्तहीन क्रम जारी रहा। ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि ये सब लोग किसी समूहगान का अभ्यास कर रहे हों। जिस बेकरी में मैं काम कर रहा था वहाँ विविध प्रकार की इन आवाज़ों का मानो एक धारा बहता हुआ आरहा था। सब आवाजें एक दूसरे से कितनी भिन्न थीं किन्तु अपने लुभा लेने वाले आकर्षण में कितनी समान थीं।

और चूँकि मेरे मस्तिष्क पर भी बहार छाई हुई थी इसलिए मेरी कल्पना में एक ऐसी स्त्री थी जो पृथ्वी की प्रत्येक वस्तु से अपार प्रेम करती थी अत: मैंने याश्का को सम्बोधित करते हुए बुलन्द आवाज़ में कहा :

है वही गम्भीर...

शातुनोव ने मैली-कुचैली खिड़की की तरफ से मुँह मोड़ लिया और बंजारे के जवाब को अपनी पाटदार आवाज में गुम करते हुए गाने लगा :

और मंजिल सख्त...

तख्ते की दीवार की दरार में से मालिक के कमरे में से बूढ़ी मालकिन की आपत्तिपूर्ण और भिखारिन की-सी आवाज़ आई :

"वासिली प्यारे, वासिली जानी !"

एक हफ्ते से भी ज्यादा हो गया था कि मालिक बुरी तरह पी रहा था । लेकिन अब भी मदिरा-पान का यह दौरा थमता नज़र न आता था । नशे में वह इस हद तक चूर हो गया था कि ज़बान से एक शब्द भी स्पष्ट नहीं निकलता था । हल्क़ों में उभरी हुई आँखें धुंधली और अप्रतिभ-सी हो गई थीं क्योंकि वह अन्धे आदमी की नाईं तनकर और सीधा होकर चलने लगा था । उसका सारा जिस्म इस तरह फूला हूआ और नर्म था जैसे अभी-अभी नदी में से घसीट कर निकाला गया हो । उसके कान पहले से बड़े लगने लगे थे और खड़े हुए मालूम देते थे । होठ पिचक गए थे और चेहरा वैसे ही इतना भयंकर हो गया था कि खुले हुए जबड़ों में से नजर आते हुए दाँत फालतू मालूम देते थे । कभी-कभी वह अपनी छोटी-छोटी टाँगों को लड़खड़ाता ख्वामख्वाह भारी-भारी कदम रखता हुआ अपने कमरे से बाहर आता और जो भी कोई उसके रास्ते में आता उसी पर बुरी तरह ढह पड़ता । और अपने अप्रतिभ नेत्रों से उसे ऐसे भयानक ढँग से घूरता कि मतली आने लगती । उसके पीछे वोडका से भरी हुई एक सुराही और एक ग्लास अपने बड़े-बड़े पंजों में दबोचे और नशे में उसी क़द्र मदमस्त येगोर आता । उसके चेचक भरे चेहरे पर लाल और सफेद धब्बे होते । बोझिल आँखें अधखुली होतीं और मुँह इस तरह खुला होता जैसे कि किसी ने

अपने जिस्म पर चहका लगा लिया हो और साँस लेने के लिए बेदम हो कर मुँह फाड़ रखा हो ।

मुँह खोले बिना ही वह मँह-ही-मुँह में बड़बड़ाता :

"हटो, हटो रास्ता दो । मालिक आ रहा है ।"

और सबसे आखिर में बूढ़ी मालकिन सिर झुकाए आती । उसकी आँखों से पानी इस क़दर रिसता होता मानो अब फौवारा छूटा । और जो ट्रे उसके हाथ में है उसको भरना शुरू किया । ट्रे के अन्दर रखी हुई नीली रकाबियों में मछली के कबाब और इसी क़िस्म के खाद्य बिखरे हुए होते ।

कारखाने पर मौत का-सा सन्नाटा छा गया था । मालूम होता था कि यहाँ दमघोंट रात ने डेरे डाल दिए हैं । खामोश मतवालों की यह टुकड़ी अपने पीछे तीखी और असह्य दुर्गन्ध के भभके छोड़ जाती । उन्हें देखकर भय और ईर्ष्या के मिश्रित भाव उत्पन्न होते और जब वे दरवाजे में से अदृश्य हो जाते तो दो-तीन मिनट तक कारखाने में भयावह स्तब्धता छाई रहती ।

फिर दबी-दबी आवाज़ में व्यंग्य कसे जाने लगते ।

"पी-पीकर मर जायगा ।"

"वह ? तुम्हारे जीते जी तो मरता नहीं ।"

"ऐ लड़को ! तुमने देखा कितने कबाब थे ?"

"खुशबू बड़े मजे की थी...।"

"अपने को तबाह कर रहा है वासिली सेम्योनिच...।"

'कितनी बोतलें पी जाता है गिने तो मज़ा आय !"

"अरे तुम तो उतनी एक महीने में भी न पी सको ।"

"तुम क्या जानो ?" सैनिक मिलोव ने कहा । उसकी आवाज़ में यद्यपि विनम्रता थी पर साथ ही अपनी शक्ति पर विश्वास भी । "ज़रा आज़माकर देखो । एक महीना अपने पास से पिला कर देख लो ।"

"अरे दीवाने हो जाओगे।"

"चलो अच्छा है। जब तक दीवाननगी रहेगा तब तक की मौज़ ही सही।"

मालिक को देखने के लिए मैं कई बार उठकर बाहर बरामदे में गया। येगोर ने बाहर आँगन में एक पुराना पीपा उलट कर धूप में रख दिया था जो दूर से ताबूत मालूम होता था। मालिक नंगे सिर था और बीच में बैठ गया था। उसके दाहिनी तरफ कबाबों वग़ैरह की ट्रे रखी हुई थी और बाईं तरफ सुराही। मालकिन भी इठलाकर नीचे के एक कोने पर बैठ गई। येगोर मालिक के पीछे उसकी बग़लों में हाथ डाले और पीठ को अपने घुटनों का सहारा दिए उसको सम्हाले हुए खड़ा था। ख़ुद मालिक ने अपना सारा बोझ पीछे की तरफ डाल रखा था। और बड़ी देर से पाला खाये हुए पीले आकाश को टिकटिकी लगाए घूर रहा था।

"येगो...क्या तुम साँस ले रहे हो ?"

"जी हाँ।"

"क्या हर साँस भगवान की महिमा प्रकट नहीं करती ? हम पूछते हैं।" नहीं प्रकट करती क्या ?"

"नहीं नहीं, ज़रूर करती है।"

"ग्लास भरो।"

मालकिन ने एक-भयभीत मुर्ग़ी की तरह फड़फड़ाते हुए वोडका का एक ग्लास अपने पति के हाथ में थमा दिया। उसने ग्लास अपने मुँह मे पैवस्त करलिया और चुसकियाँ ले-लेकर पीने लगा। मालकिन ने बड़ी फुर्ती के साथ क्रास के छोटे-छोटे चिन्ह बनाये और होंठ इस तरह सुकेडे जैसे चम्बन लेने के लिए। यह दृश्य दु:खद भी था और हास्यास्पद भी।

फिर उसने आहिस्ता-आहिस्ता मिनमिनाना शुरु किया:

"येगोर प्यारे। हाय इस तरह तो यह शराब इनकी जान लेलेगी।"

"तुम मत घबराओ मा। भगवान की इच्छा के बिना कुछ नहीं होता।" येगोर ने ऐसी आवाज़ में कहा जैसे मुर्छा में हो।

वसन्त ऋतु का सूरज बड़ी आब व ताब से चमक रहा था। बाहर गढ़ों में पानी की सतह और पत्थरों का प्रतिबिम्ब चमचमा रह था।

एक दिन मालिक ने आकाश और मकानों की छतों को जाँचते हुए इतने ज़ोर की झोकेली कि औंधे मुँह गिरते-गिरते बचा। फिर सँभल कर पूछा:

"यह किसका दिन है ?"

"भगवान का।" येगोर ने बडी कठिनाई से उत्तर दिया। क्योंकि अभी वह मालिक को गिरते-गिरते बचा ही रहा था। सेम्योनोव ने अपनी टाँग दिखाते हुए पूछा।

"यह टाँग किसकी है ?"

"तुम्हारी।"

"झूठा। मैं किसका हूँ ?'

"सेम्योनोव का।"

"झूठा !"

"भगवान के।"

"हः हः हः !"

मालिक ने पाँव उठाया और कीचड़ में ज़ोर का छपका दिया। कीचड़ की छीटें उड़कर उसके सारे चेहरे और सीने पर आईं।

"येगोरी," बुढ़िया गुनगुनाई।

येगोर ने उँगली से इशारा करते हुए कहा, "मैं मालिक की आज्ञा का उल्लँघन नहीं कर सकता मा।"

मालिक ने आँखें झपकाते हुए और अपने चेहरे से कीचड़ की छीटें पोंछने की परवाह किये बिना ही पूछा:

"क्या उसकी इच्छा के बिना एक बाल भी नहीं गिर सकता ?"

"हाँ अगर उस परम पिता की इच्छा न हो तो।"

"लाओ इधर लाओ।"

येगोर ने अपने झबरे बालों वाला सिर मालिक के आगे झुका दिया। मालिक ने उस कोसेक के घुँघरियाले बालों का एक गुच्छा अपनी मुट्ठी में दबोच कर कई बाल नोच लिये। रोशनी में उन्हें बड़ी गौर से देखकर अपना हाथ येगोर के सामने कर दिया।

"छिपालो इन्हें, कहीं गिर न पड़ें।..."

येगोर ने बड़ी सावधानी से तमाम बाल अपने मालिक की मोटी-मोटी उँगलियों में से चुन लिये और हथेली पर रख कर, दोनों हाथों को मलकर उनकी एक गोली-सी बनाली और अपनी ढीली-ढाली वास्कट की जेब की तह में कहीं ठूँस दी। उसके चेहरे को देखकर हमेशा ही से ऐसा मालूम होता था जैसे लकड़ी की तराशी हुई कोई मूर्ति है। उसकी आँखें मुर्दा थीं। जब वह टटोल-टटोल कर कँपकपाते हुए एक-एक चीज़ देखता तो पता चलता कि पीने पिलाने। के मामले में वह और भी बदतर है।

"होशियारी से रखना।" मालिक हाथ का इशारा करते हुए बड़-बड़ाया।

"हर बात के लिए उत्तरदायी होना पड़ता है।... हरेक बात के लिए।..."

मालूम होता था कि वे ये सब हरकतें पहले भी कर चुके हैं। उनके सारे क्रिया-कलापों मे एक यांत्रिकता नजर आती थी। ऐसा लगता था कि मालकिन को उससे कोई भी दिलचस्पी नहीं है सिर्फ उसके काले और लाल होंठ निरन्तर हिल रहे थे।

"गाओ!" सहसा मालिक की भर्राई हुई आवाज़ आई।

येगोर ने अपनी टोपी पीछे खिसका ली और बड़ा ही भयावना चेहरा बना लिया। और मालिक के पास बैठते हुए मोटी आवाज़ म

गाना शुरू किया ।

देखो लड़के आरहे हैं डान के···

मालिक ने अपना हाथ फैला दिया जैसे कोई भिखारी भीख माँग रहा हो ।

हो तरुण कोसेक तुम हो शूर-वीर···

मालिक ने अपना सिर उठाया और हुंकारने लगा । और उसके भयावने अप्रतिभ मुख पर बहते हूए आँसुओं की लड़ियाँ देखकर ऐसा जान पड़ता था कि बस अब वंह पिघलने ही वाला है ।

इन्हीं तमाशों के दौरान में एक बार ओसिप ने, जो मेरे पास ही बराम्दे में खड़ा था, आहिस्ता से मुझसे पूछा:

"देखा कुछ ?"

"अच्छा फिर ?"

उसने मेरी ओर देखा और फिर मुस्कराने लगा । यह मुस्कान बड़ी दयनीय ओर निराशाजनक थी । कुछ दिनों से वह बड़ा ही निढाल दिखाई देने लगा था । उसकी मंगोलियन आँखें मालूम होता था जैसे बड़ी होगई हैं ।

"हैं क्या यह ?"

ओसिप ने झुक कर मेरे कान में कहा:

"मालदार है क्यों हैना ? सुख चाहिए ? लो यह है सुख । याद है वह···

जब मालिक का शराबनोशी का दौर चल रहा होता तो क्लर्क साश्का भी कारखाने में इस तरह लड़खड़ाता फिरता जैसे कि वह भी नशे में हो उसकी आँखें थरथराती और झपकती रहतीं । हाथ लटकते रहते जैसे टूट गये हों । और उसकी सुर्ख़ लटें चपचपाती हुई माथे पर थिरकती रहतीं । साश्का चोट्टेपन के बारे मे कारखाने में हरेक कोई खुले बन्दों बातें करता और स्वीकार सूचक मुस्कराहट से उसका स्वागत करता ।

कुज़िन तो और भी चिकनी-चुपड़ी बातें मिलाकर क्लर्क के गुण गाता।

"अरे वह ? वह तो बाज़ की तरह है बाज़ की तरह ! और देख लेना यह हमारा अलेक्जान्द्र पेत्रीव कितनी ऊँची उड़ान मारता है लिख के रखलो यह बात।"

हर शख्स ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार चोरी की। चोरी की और वह भी बड़ी शान व लापरवाही के साथ। और यह आमदनी फौरन शराबखोरी पर खर्च हो गई। तीनों-की-तीनों बेकरियाँ नशे में मस्त थीं। ऊपरी काम करने वाले छोकरों को जब शराबखानों से वोडका लेने भेजा जाता तो वे भी कुछ बिस्कुट अपनी कमीसों में छिपाकर लेजाते और उनके बदले में कहीं से मिठाई की गोलियाँ ले आते।

"इस तरह से तुम लोग सेम्योनोव का जल्दी ही दीवाला पीट दोगे।" मैंने एक दिन बंजारे से कहा। वह अपने खूबसूरत सिर को हिलाते हुए बोला:

"अरे भैया, मेरे हर रुबल के पीछे वह तो ३६ कोपेक कमाता है।"

वह तो इस तरह बाते करने लगा जैसे उसे अपने मालिक के कारोबार का पूरा-पूरा और ठीक-ठीक ज्ञान हो।

मैंने क़हक़हा लगाया। पाशा ने मुझे इस तरह घूरा जैसे उसे मेरा क़हक़हा अच्छा न लगा हो और फिर मुँह बनाकर बोला:

"तुम्हें तो हर छोटी-मोटी बातों की फिक्र हो जाती है।··· यह क्या हो गया है तुम्हें ?"

"अरे भई फिक्र हो जाने की बात नहीं।...लेकिन यहाँ की गड़बड़ मेरी समझ में तो खाक नहीं आती।"

"अरे भई जब गड़बड़ी है तो फिर समझ में क्या आयगी ?" शातुनोव ने विस्मित होकर कहा। सारा कारखाना हमारी बातचीत बड़ी ग़ौर से सुन रहा था।

"तुम ही तो मालिक की बड़ाई करते हो कि बडा होशियार आदमी है। इतना बड़ा कारोबार सँभाले हुए है ।...तुम्हारी मेहनत के बल पर। समझे ?—लेकिन फिर भी तुम ही हर मुमकिन कोशिश उसे तबाह करने की कर रहे हो।"

कई आवाज़ों ने एक साथ जवाब दिया :

"उसे तबाह करना असम्भव है !"

"जो हाथ लगे हड़प कर जाओ। बस यही बेहतर है !'

"हम तो खुलकर साँस ही उस घड़ी ले सकते हैं जब वह शराब के नशे में धुत्त हो ।..."

मेरी बातचीत का साश्का को फौरन पता चल गया और वह लपका हुआ बेकरी में आया। वह हल्के कत्थई रंग का सूट पहने हुए बड़ा जँच रहा था। दाँत निकोस कर ग़ुर्राते हुए बोला :

"मेरी नौकरी पर दाँत हैं तुम्हारे, क्यों ? कोई डर नहीं। हो तो तुम बड़े चालाक पर अभी कच्चे हो ज़रा।..."

हर शख्स भूखे शेर की तरह उसकी ताक में था कि उस पर टूट पड़े और उससे एक झड़प हो जाय मगर साश्का मुस्तैद तो था पर साथ ही सावधान भी। उसके अलावा हमने भी फैसला कर लेने की कोशिश की थी। उसकी निरंतर छेड़छाड़ और व्यंग्य से तंग आकर एक दिन मैंने उससे साफ कह दिया था कि वह अपनी इन हरकतों से बाज़ आजाय वरना मैं अच्छी तरह मरम्मत कर दूँगा। एक बार छुट्टी के दिन शाम के वक्त का ज़िक्र है। सब लोग चले गये थे। मैं और वह आँगन में अकेले रह गये।

"आ जाओ तो फिर !" उसने अपना कोट उतार कर बर्फ पर फेंक दिया और ललकार कर कहा, आस्तीने चढ़ाईं और लड़ने को तैयार हो गया। "हो जाय आज। मुँह पर मारने की नहीं है बस सिर्फ बदन पर। यह मुँह तो मुझे कारखाने के लिए चाहिए तुम तो जानते ही

हो।..."

और अन्त में हारा हुआ साश्का ही मुझसे गिड़गिड़ा कर कह रहा था:

"देखना मेरे अच्छे-से भैया, किसी और से मत कहना कि तुम मुझ से ज्यादा ताक़तवर हो। मै तुम्हारा बड़ा आभारी हूँगा। तुम तो यहाँ पर अस्थायी रूप से काम कर रहे हो—उड़ती चिड़िया हो—आज यहाँ हो कल कहीं और चले जाओगे। लेकिन मुझे तो इन्हीं लोगों के साथ रहना है। समझ गये न मेरा मतलब ? खूब ! धन्यवाद ! चलो आओ अन्दर चलकर एक प्याला चाय का पिएँ।"

उसके छोटे-से कमरे में हम दोनों किवाड़ बन्द किये बैठे चाय पी रहे थे तो वह एक-एक शब्द जमा-जमाकर और समझा-समझाकर कह रहा था।

"अरे यार तो...हाँ यह तो बिल्कुल ठीक है कि मैं ज़रा यों समझलू कि हाथ की सफाई खूब जानता हूँ। भई, मैं भी इन्सान, तुम भी इन्सान। ठण्डे दिल से तमाम हालात पर ग़ौर तो करो..." और मेज पर झुक कर उसने जोर देते हुए इस अन्दाज में कहा जैसे गीत गा रहा हो। उसकी आँखें पता दे रही थीं कि वह चोट खाया हुआ है।

"क्या मैं सेम्योनोव मे भी बुरा हूँ ? उससे कम चालाक हूँ ? क्या मैं नौजवान नहीं, खूबसूरत नहीं, चुस्त व चालाक नहीं ? अरे मुझे कहीं ज़रा पाँव टिकाने का मौक़ा देदो। कोई बहुत ही छोटा-सा कारोबार मेरे सुपुर्द कर दो। फिर मैं सब कुछ सँभाल लूँगा। दिखा दूंगा तुम सबको कि मैं क्या हूँ ! और देख कर अगर मुँह चाटते न रह जाओ तो मुझसे कहना। मेरी यह शक्ल व सूरत है, क्या इस पर भी मैं किसी धनवान विधवा से शादी नहीं कर सकता ? क्यों ? या किसी तरुण श्रीमंत घराने की लड़की से जो भारी दहेज लेकर आये। क्या मैं उस लायक़ भी नहीं ? मैं तो सैकड़ों आदमियों का पेट पाल सकता हूँ।

सेम्योनोव की क्या हस्ती है ? अरे उसे तो देखकर क़ै आती है । अजीब भोंदू-सा शख्स है । देखो तो भला यहाँ मौज करता है । पड़ा होता कहीं दलदल में तो अच्छा भी लगता । इस हालत में तो वह मुझे बड़ा खटकता है ।"

उसका लाल लालची मुँह गोल हो गया—बटुए के मुँह की तरह और उसमें से सीटी की-सी आवाज़ निकली ।

"हाँ तो यार मेरे ! ईमानदारी की जिन्दगी अगर किसी की हो सकती है तो वह पादरी है । लेकिन हर शख्स जानता है कि पादरी हमेशा कुछ सुस्त-सुस्त और उदास रहते हैं । और उनका शरीर भी दुर्बल होता है । थाने के मुहर्रिर को जानते हो ? वह लोश्किन ? उसीने लिखी है वह कविता जिसका शीर्षक है 'पादरी की गाथा' । बड़ा ही विद्वान व्यक्ति है । हालाँकि है पक्का शराबी । खैर तो उस क़िस्से में पादरी ने साफ कहा है, 'हे भगवान तू भी बड़ा अन्यायशील है । चोरी बिना जीवन बिता देना भी संभव ही नहीं ।"

यह चुस्त व सुडौल जिस्म और उस पर सुर्ख सिर मुझे प्राचीन भाले का-सा नज़र आ रहा था । एक अग्निबाण की भाँति कोई वस्तु जो रात्रि के समय मृत्यु और सर्वनाश का अपना कार्य सम्पन्न कर रहा हो ।

मालिक की शराबनोशी के इन दिनों में साश्का के हाथ की सफाई पूरी तीव्रता के साथ जारी थी । छोटे-छोटे परिन्दों पर झपटते हुए शिकरे की तरह उसे दौड़ते और रुबल एकत्र करते देखकर बड़ी घृणा होती थी । पर साथ ही वह दृश्य आकर्षक भी होता था ।

"अब तो यहाँ जेलखाने का-सा वातावरण पैदा हो गया है ।" शातुनोव ने एक दिन मेरे कान में कहा । "जरा बचकर रहना, कहीं तुम भी लपेट में न आजाओ ।"

अब दिन-ब-दिन वह मेरा ज्यादा ख्याल रखने लगा था । और

मेरा काम करने के लिए हर वक्त मेरे इर्द-गिर्द ही घूमता रहता जैसे कि मैं कोई लँगड़ा-लूला या अपंगु हूँ। कभी आटा लिये चला आरहा है तो कभी मेरे वास्ते लकड़ियाँ लारहा है और कभी आटा गूँधने पर ज़िद कर रहा है।

"आखिर मतलब क्या है तुम्हारा ?"

मुझसे निगाहें चुराकर, बड़बड़ाते हुए उसने कहा:

"कोई हर्ज नहीं, तुम्हारी ताकत कहीं और अधिक और उपयोगी बातों में काम आयेंगी।...पुम्हें इसका ध्यान रखना चाहिए।...अच्छी सेहत इन्सान को जिन्दगी में बस एक बार मयस्सर होती है।"

और फिर सदा की भाँति उसने दबे स्वर में पूछा :

"मुावरे का क्या अर्थ है ?"

या फिर वह कोई अजीब-सी बात कह देता :

खिलिस्ती सम्प्रदाय के लोग ठीक कहते हैं कि हमारी मा (ईसा-मसीह की मा मरियम) एक नहीं बल्कि कई हैं।"

"क्या मतलब ?"

"उसके अर्थ पर न जाओ, बस।"

"लेकिन तुम खुद ही तो कहते कि भगवान सबका एक है ?"

"सो तो है ही। लेकिन लोग तो विभिन्न हैं। वे उसको अपनी आवश्कतानुसार बना लेते हैं। उदारहण के लिए तातारी, मोर्डवी-नियन ! बस यही पाप है।"

एक बार रात को वह मेरे पास तँदूर के सामने बैठा हुआ था कि बोला :

"क्या ही अच्छा हो कि एक बाजू टूट जाय ! या टाँग टूट जाय। या कोई ऐसी बीमारी हो जाय जो दिखाई दे।"

"वह क्या ?"

"मेरा मतलब है किसी प्रकार का कोई.....लँगड़ा-लूला होना

.....समझे ?"

"दिमाग तो ठीक है तुम्हारा ?"

"बिल्कुल !"

चारों ओर दृष्टि डालकर उसने अपने कथन की व्याख्या आरम्भ की, "मेरा ख्याल था कि मैं जादूगर बनूँगा। मुझे बड़ा ही शौक था उसका ! मेरे नाना जादूगर थे और पिता के चाचा भी हमारे गाँव में उनके चाचा मशहूर जादूगर थे। और गाँव में झाड-फूँक और इलाज भी किया करते थे। शहद की मक्खियाँ भी पाला करते। जिले का हर आदमी उनको जानता था। यहाँ तक कि तातारी और चूवाशी और चेरेमेसी भी उनका लोहा मानते थे। अब वह कोई सौ से भी ऊपर हैं। कोई सात वर्ष हुए उन्होंने एक नवजवान लड़की रखली थी—एक अनाथ तातारी लड़की। और उससे उनके सन्तान भी हुई अब और शादी वह नहीं कर सकते। तीन शादियाँ उनकी पूरी हो चुकीं।"

एक गहरी साँस लेकर उसने आहिस्ता-आहिस्ता और सोच-सोच कर फिर बयान करना शुरू किया :

"भला बतलाओ, तुम उसे ढोंग कहते हो, ! सौ बरस तक कोई ढोंग नहीं रचा जा सकता ढोंग तो कोई भी कर सकता है लेकिन उससे आत्मा सन्तुष्ट नहीं होती।"

"पर सुनो तो, लँगड़ा-लूला क्यों बनना चाहते हो तुम ?"

"हाँ हाँ, जी तो किसी और तरफ लगा हुआ। .....मैं दुनिया भर की सैर करना चाहता हू। एक-एक कोना छानना चाहता हूँ। देखना चाहता हूँ कि आखिर दुनिया की क्या हालत है।"..... कैसी जिन्दगी वह बसर करती है; क्या-क्या उसकी उम्मीदें हैं। हाँ, मगर मुझ जैसा हट्टा-कट्टा आदमी क्या बहाना बना सकता है तीर्थ यात्रा को जाने को लोग कहेंगे क्या बात है ? क्यों मारे-मारे फिर रहे हो ? क्या बहाना बना सकता हूँ, कुछ भी नहीं। इसलिए अब मैं सोच

रहा था कि मेरा बाजू कट कर गिर गया होता या फोड़े पक-पक कर नासूर हो गये होते तो···नासूर तो और बुरे हैं, लोगों को उनसे वहशत होती है।"

वह अचानक खामोश हो गया। उसकी तिरछी आँखें आग को घर रही थीं।

"तो तुम उसका पक्का निश्चय कर चके हो?"

"अगर निश्चय न कर चुका होता तो मैं उसका जिक्र ही न करता उसने एक कश लेते हुए कहा, "वह जो कहते है ना कि निर्णय किये बिना कहते फिरना खाली-खूली रोब जमाना है, वैसे ही।·····"

उसने मायूमी के आलम में अपने हाथ हिलाये और खामोश होरहा।

आर्तेम जम्हाइयाँ लेता और मुस्कराता हुआ और अपने झाड़-झकाड़ बालों वाले सिर का खुजाता दबे पाँव हमारे पास आया।

"मैंने सपने में देखा है कि मैं नहा रहा हूँ और नदी में गोते मारने वाला हूँ। दो चार कदम पीछे गया और लगादी छलाँग...—बड़ाँग! और मेरा सिर दीवार से टकरा गया! मेरी आँखों से सुनहरे आँसू बहने लगे।"

और वास्तव में उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं।

कोई दो दिन बाद रात के वक्त जब में तँदूर में रोटियाँ रख कर मीठी नींद सो चुका था तीकि सी की डरावनी चीखों ने मुझे जगा दिया बिस्कट की बेकरी की ड्योढ़ी की महराब में मालिक खड़ा गंदी-गंदी

गलियाँ बक रहा था गालियाँ उसके मँह से ऐसे निकल रहीं थीं कि जैसे फटे हुए बोरे मे से चने के दाने। वह भी एक से एक बड़कर गँदा।

उसी क्षण मालिक के कमरे का दरवाजा भी एक झटके के साथ खुला और क्लर्क साश्का दरवाजे की चौखट पर घसिटता हुआ आ पड़ा। मालिक उस पर बुरी तरह पिला हुआ था-कभी सीने पर कभी पसलियों में लाते और घूसे इस तरह लगातार पड़रहे थे जैसे यही इसका काम है जिसे वह एकाग्रचित्तता के साथ पूरा कर रहा है।

"हाय! तुम तो मुझे मार डालोगे!" लड़का बुरी तरह चीख रहा था।

सेम्योनोव बड़े सन्तोष के साथ लात रसीद करता और फिर इत्मेनान के साथ हुकारता। इतनी देर मे साश्का जमीन पर दुहरा पड़ा लुढ़कता रहता लेकिन जब भी कभी वह उठकर खड़े होने की कोशिश करता वह उसे वही उठाकर जमीन पर पटख देता।

सब मजदूर बिस्कुटों की बेकरी से निकल कर दौड़े हुए पहुँचे और खामोशी के साथ एक गुट-सा बनाकर खड़े हो गये। सुबह तड़का था और उस सुरमई रोशनी मे किसी के चहरे साफ नजर नही आ रहे थ। लेकि। उनमें एक सनसनी और भय उप्पन्न हो जाने का आभास जरूर मालूम होता था। साश्का हाँफता-कराहता उनके कदमों में जा पड़ा।

"भाइयो! वह तो मुझे मार डालेगा!"

वे सबके सब पीछे हट गये जैसे आँधी के एक झोंके में सूखी हुई टहनियों की बाड़ झकोला खाकर गिर पड़े। इतने ही में अचानक आर्तेम भीड़ को चीरता हुआ बाहर आया और मालिक के मुँह के ठीक पास जाकर बोला:

"बस, बस हो चुकी!"

सेम्योनोव ठिठक गया। मौका पाते ही साश्का मछली की तरह

फड़का और भीड़ में गायब हो गया।

एकदम सन्नाटा छा गया। कई सेकन्ड तक भयानक स्तब्धता छाई रही। और कोई फैसला न कर सका कि जीत किसकी होगी—इन्सान की या हैवान की।

"कौन है ?" मालिक ने भराई हुई आवाज में पूछा और हाथ उठाकर आर्तेम को गौर से देखने लगा। इस अर्से में उसका हाथ सिर से ऊँचा उठ गया था।

"मैं हूँ !" आर्तेम ने आवश्यकता से अधिक जोर लगा कर कहा और एकदम पीछे हट गया। मालिक ने उस पर भी हाथ छोड़ा लेकिन ओसिप फौरन ही लपककर आगे बढ़ा और उसने मुक्का अपने मुँह पर रोक लिया।

"देखो !" उसने बड़े इत्मेनान के साथ अपने सिर को एक झटका देकर कहा, "बस करो, लड़ो मत !"

और उसी क्षण सैनिक पाश्का, दुबला-पतला लापतेव और निकिता कोई पीठ पर हाथ बाँधे, कोई जेबों में ठूँसे मालिक को घेरने के लिए आगे बढ़े। सभी के सिर झुके हुए थे मानो उसे टक्कर मारने जा रहे हों। सब-के-सब एक साथ हमेशा के विपरीत जोर-जोर से चीख रहे थे।

"बस हो चुकी बहुत ! हमें क्या तुमने खरीद लिया ? वाह वाह ! अब हम आगे सहन नहीं कर सकते !"

मालिक निश्चल व निस्पन्द खड़ा था मानो कीड़ा खाए और टूटे-फूटे फर्श में पैवस्त हो गया हो। उसके हाथ पीठ पर बँधे थे। सिर एक ओर को झुका हुआ था मानो गडमड आवाजों को सुनने और समझने की कोशिश कर रहा हो। जैसे-जैसे आदमियों का काला जमघट उसके चारों तरफ बढ़ता गया, कोलाहल में वृद्धि होती गई। दीवार पर लगे हुए लैम्प का पीला प्रकाश उस अन्धकार के विरुद्ध असफल चेष्टा

कर रहा था। लेकिन जब काई शख्स दाँत निकाले उसके ठीक सामने आजाता तो वही हिस्सा प्रकाश में आकर ऐसा लगने लगता जैसे कि जिस्म के बाकी हिस्से से कटकर अलग हो गया हो। सब-के-सब चीख-चीख कर आस्मान सिर पर उठाए हुए थे। मगर फिर भी निकिता की आवाज उन सब में बुलन्द थी।

"तुमने मेरी सारी शक्ति चूस डाली। भगवान के सामने क्या मुँह लेकर जाओगे ? हाय रे इन्सान, हाय !"

गालियाँ बढ़ते-बढ़ते बहुत ही गंदी हो गई थीं और कभी-कभी तो लोग घूसे तान-तानकर सेम्योनोव को धमकियाँ देते और वह तो मालूम होता था जैसे खड़े खड़े ही सोगया हो।

"तुम्हें धनवान किसने बनाया ! हमने ?" आतम चिल्लाया। और बेचारा किताब खोलकर पढ़ने लगा।

"याद रखो, हम सात बोरे आटे के हर रोज बिस्कुट बनाने के लिए हरगिज तैयार नहीं हैं।"

आखिरकार मालिक मुड़ा और अजीब अन्दाज में सिर को हिलाता हुआ खामोशी के साथ चला गया।

बिस्कुट की बेकरी में शांतिपूर्ण किन्तु उत्साह भरे उत्सव का दृश्य उपस्थित था। हर व्यक्ति अपने-अपने काम में संलग्न नजर आता था। और सब-के-सब एक-दूसरे को जैसे नई आँखों से देख रहे थे—विश्वास, नर्मदिली, और कुछ उलझन से। और बंजारा तो चहचहा रहा था।

"चलो यारो ! लग जाओ काम पर कान फड़फड़ाकर।"

"चल जवान हमेशा ! बिल्कुल ठीक-ठीक और न्याय के साथ हम भी दिखा देंगे कि काम किसको कहते हैं। चलो जुट जाओ काम में।"

लापतेव आटे की बोरी कंधे पर लादे कारखाने के बीचों बीच खड़ा

अपने होंठ चाट-चाट कर चूस रहा था।

"देखा क्या होता है·····जब तुम सब एका कर लेते हो तो·····"

शातुनोव जो नमक तोल रहा था, हुमक कर बोला :

"अरे, बच्चे एका करलें तो अपने बाप को भी पीट सकते हैं।"

सब लोग ऐसे व्यस्त नजर आ रहे थे, जैसा कि वसन्त ऋतु में शहद की मक्खियाँ·····आर्तेम विशेषतया प्रमुख था। सिर्फ बूढा कुज़िन हमेशा की तरह अपनी ग़नग़नी आवाज में कह रहा था :

"अरे शैतानो ! क्या सोच रहे हो तुम, कमबख्तो।"

गिरजाघर के घण्टों, मीनारों और मकानों की छतों पर सुरमई धुंध छाई हुई थी। सारा शहर मुंडा-मुंडा सा नजर आता था। और लोग भी दूर से ऐसे मालूम होते थे जैसे सिर फ़टे फिर रहे हों। वायु-मंडल पर एक सर्द-सी बौछार छाई हुई थी और साँस लेना तक मुश्किल हो रहा था। आस-पास की हर चीज पर मलगुजा-सा सफेद रंग चढ़ा हुआ था। और जहाँ अभी तक रात की जली हुई रोशनियाँ बुझाई नहीं गई थीं वहाँ हल्की-सी ज़र्दी छाई हुई थी।

पत्थर की पटरियों पर छतों से टपकता हुआ पानी उदास-उदास सी आवाज पैदा कर रहा था। पथरीली सड़क पर घोड़े के सुमों की चाप खोखली हो-होकर गूँज रही थी। और धुंध में ऊपर कहीं से मुअज्जिन शोकपूर्ण आवाज से सुबह की नमाज़ के लिए लोगों को पुकार रही थी।

मैं अपनी पीठ पर बनों की एक टोकरी उठाए लिए जा रहा था और मुझे यों महसूस होने लगा था कि मैं निरन्तर और सदा ही चलता चला जाऊँगा। उस धुंध से गुजरकर खेतों को पार करता हुआ किसी राजमार्ग पर पहुँच जाऊँगा जहाँ वसन्त ऋतु का चमकता-दमकता सूर्य निश्चित ही उदय हो गया होगा।

एक घोड़ा गर्दन ताने, अगली टाँगे उछालता धुंध में से निकला और मेरे पास से होता हुआ गुजर गया।—घोड़ा बड़ा मोटा-ताजा और कत्थई रंग का था जिस पर काले दाग पड़े हुए थे और उसकी लाल आँखों में दुःख व उदासी की एक झलक। बग्घी पर गाड़ीवान की जगह पर येगोर बाँहें ताने ऐसा तना हुआ बैठा था जैसे कि लकड़ी पर नक्शा खुदा हुआ हो। बग्घी के अन्दर मालिक हिचकोले खाता दिखाई दिया। उस समय वह लोमड़ी की खाल का कोट पहने हुए था जबकि गर्मी काफी हो रही थी।

यह तेज व तर्रार घोड़ा कई बार बग्घी के टुकड़े-टुकड़े कर चुका था। अभी पिछले दिनों येगोर और मालिक को कीचड़ और खून में लथपथ घर लाया गया था। पसली की हड्डियाँ चुर्र-मुर्र हो गई थीं लेकिन फिर भी दोनों को इस मोटे-ताजे जानवर से बड़ी मुहब्बत थी।

एक बार जब येगोर घोड़े को साफ कर रहा था जिसने अभी एक मिनट पहले ही उसके कंधे पर काट खाया था, तो मैंने सलाह दी कि अच्छा तो यह हो कि इस जानवर को तातारियों के हाथ बेच दिया जाय ताकि वे उसे ज़िबह कर डालें! यह सुनते ही येगोर तनकर खड़ा हो गया और भारी खरेरे से मेरे सिर को निशाना बाँधते हुए धमका कर बोला :

"भाग जाओ!"

वह शख्स मुझसे फिर कभी न बोला और अगर मैंने उससे बात-चीत शुरू करनी भी चाही तो वह बैल की तरह सिर झुकाकर एक तरह चल दिया सिर्फ एक बार उसने अचानक पीछे से आकर मेरा कंधा दबोच लिया और झिझोड़ते हुए बोला :

"अरे बुद्धू! मैं तुमसे कई गुना ज्यादा ताकतवर हूँ। तुम जैसे तीन से निपट सकता हूँ और तुमसे तो सिर्फ एक हाथ से। समझे? बस

मालिक सिर्फ़……"

यह बातचीत उसने बड़े भावुक ढंग से की और उसका इस पर इतना असर हुआ कि वह वाक्य तक पूरा न कर पाया। उसकी कनपटियों पर नीली रगें उभर आईं और माथा पसीने से तरबतर हो गया।

ज़बानदराज़ नन्हा याश्का उसके बारे में कहा करता था :

"हाथ तो उसके तीन जरूर हैं मगर खुद वह बोंगा है।"

सड़क और भी तंग होती गई। हवा और ज्यादा नम हो गई थी मुअज्ज़िन की अज़ान भी खत्म हो गई थी। घोड़े की टापों की आवाज दूर जाकर गुम हो गई और हर चीज एक आशाजनक स्तब्धता में छिप गई।

नन्हा याश्का साफ-सुथरी लाल कमीस पहने और सफेद एप्रन बाँधे दरवाजा खोलने आया और टोकरी उतरवाते हुए उसने मुझे चुपके से सावधान किया :

"मालिक !……"

"मुझे मालूम है।"

"गुस्से में है……"

उसी दम अल्मारी के पीछे से गुर्राने की आवाज आई।

"बड़बड़िये, यहाँ आओ !"

वह पलंग पर बैठा हुआ था और उसका एक तिहाई हिस्सा घेरे हुए था। अर्धनग्न सोफिया करवट लिये लेटी थी। उसने अपने हाथ सरहाने रखे हुए थे। एक टाँग अन्दर को सुकेड़ रखी थी और दूसरी जो नंगी थी वह उसने मालिक के घुटनों पर डाल रखी थी। उसने मुस्कराते हुए अपनी उन विचित्र-सी साफ शफ़्फ़ाफ आँखों से मुझे देखा। नजर आ रहा था कि आक़ा आकर उसके कार्य में बाधक हुआ है। उसके घने बाल आधे तो चोटी में गुँधे हुए थे और बाकी

आधे एक लाल और मसले हुए तकिये पर बिखरे पड़े थे। लड़की का छोटा-सा घुटना अपने हाथ में लेकर दूसरे से उसके पाँव की उँगलियों के लाल नाखूनों को भींचा।

"बैठ जाओ !...अच्छा तो आज हम गंभीरता से बात कर लें।"

सोफिया के पाँव को थपथपाते हुए उसने आवाज दी :

"याश्का, समावार ! चलो सोवा उठ बैठो।"

उसने जम्हाई लेते हुए धीरे से कहा :

"मेरा तो जी नहीं चाहता।"

"आओ, चलो उठ भी जाओ।"

उसने उसकी टाँग अपने घुटनों पर से सरकाली और आहिस्ता से खाँसते हुए कहा :

"बाज बातें ऐसी हैं जो हमें करना ही पड़ती हैं चाहे हमें अच्छी लगें या न लगें। खुद जिन्दगी ही हमारे स्वभाव के विपरीत गुजरती है।"

सोफिया बेढंगेपन से फिसलकर फर्श पर लेट गई और उसकी टाँगें घुटनों से ऊपर तक खुल गईं। मालिक ने उसे डाँटते हुए कहा:

"तुम्हें इतनी भी शर्म नहीं आती, सोवा ?"

उसने अपने बाल सँवारने शुरू कर दिये और जम्हाई लेते हुए बोली :

"तुम्हें मेरी शर्म की क्या परवाह ?"

"अकेला तो नहीं हूँ मैं ही ? सामने लड़का बैठा है।"

"उससे मेरी जान पहचान है।

गंभीर भाव-भंगिमा लिये, भवें सुकेड़े और गाल फुलाये हुए याश्का समावार लेकर अन्दर दाखिल हुआ। समावार देखने में बिल्कुल याश्का जैसा ही था वैसा ही छोटा-सा साफ-सुथरा और ठस्सेदार !

"उहँ नालायक !" सोफिया ने झटके के साथ अपनी चुटिया खोलकर और अपने लहरियेदार बाल कंधे पर डालते हुए कहा और सिंगार मेज के सामने आकर बैठ गई।

"खैर तो·····" मालिक ने कहना शुरू किया। इस समय उसकी तेज वाली मँजरी आँख अधखुली और दूसरी मुर्दावाली आँख बिल्कुल बंद थी।

"तो यह झगड़ा फिसाद करने की शै तुमही ने दी थी ?"

"तुम्हें तो मालूम ही है !"

"निश्चित रूप से। पर तुम क्या कहते हो ? क्या कारण है उसका ?"

"बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं बेचारों को।"

"बहुत खूब ! मगर ऐश कौन कर रहा है ?"

"तुमही उनसे अधिक सुख-चैन से हो।"

"वाह वाह !" उसने खिल्ली उड़ाते हुए कहा, "खूब समझते हो ! सोवा ! चाय दो इनको। नींबू है ? मैं नींबू डालूँगा !"

ऊपर रोशनदान वाली खिड़की में, जो मेज के ऐन ऊपर थी, एक जंगदार पंखा गुनगुना रहा था। समावार भी सनसना रहा था। मालिक की बातचीत के बावजूद ये तमाम आवाजें सुनाई दे रही थीं।

"चलो छोड़ो। बात को क्या खींचना। अगर तुम्हारे आदमी गड़बड़ करते हैं तो भई, गड़बड़ को खत्म तो करना ही होगा। क्यों ठीक है ना ? वरना तो तुम किस काम के ? क्यों सोवा, मैं कुछ गलत कह रहा हूँ ?"

"मैं क्या जानूं ? मुझे क्या वास्ता ?" उसने इत्मेनान के साथ जवाब दिया। मालिक एकदम बिगड़ पड़ा :

"किसी से कुछ वास्ता ही नहीं, मूर्खा कहीं की। मैं पूछता हूँ तुम

आखिर गुजारा कैसे करोगी ?"

"मैं तुमसे कुछ नहीं सीखूँगी, खातिर जमा रखो।

वह अपनी कुर्सी पर आराम से लेटी हुई थी। चाय की एक छोटी-सी नीली प्याली में पाँच डल्लियाँ शकर की डालकर मजे से घुला रही थी। उसकी सफेद चोली सामने से खुलगई थी और बड़ी-सी सुडौल छाती नजर आने लगी थी जिसकी नीली २ नसों में रक्त-संचार तेज मालूम होता था। उसके मूर्खतापूर्ण चेहरे से नींद के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे। या फिर मालूम होता था कि वह किसी गहरे सोच में हैं। होंठ उसके इस तरह खुले हुए थे जैसे किसी बच्चे के।

"अच्छा तो खैर !" मालिक ने बातचीत का क्रम जारी रखते हुए कहा और उसकी चमकदार आँखमे रे चेहरे के भाव टटोलने लगी।

"मैं तुम्हे साश्का की जगह लगाना चाहता हूँ, क्यों ?"

"धन्यवाद ! पर मैं कर नहीं सकता वह काम।"

"नहीं क्यों ?"

"वह उचित नहीं है मेरे लिए।"

"मगर कैसे, कुछ बताओ तो सही।"

"योंही, मेरा दिल नहीं चाहता उस काम के करने को।"

"फिर वही दिल !" उसने एक ठण्डी साँस खींचते हुए कहा और बड़े ही सुन्दर शब्दों में दिल, जान और आत्मा को भला-बुरा कहकर वह जरा जोश में आ गया और चीखते हुए उसने बोलना शुरू किया :

"हाय, कहीं यह आत्मा मुझे देखने को मिल जाय एकबार फिर जरा अपने नाखून से कुरेदकर देखूं भला काहे की बनी हुई है। यह सब खब्तीपन नहीं तो और क्या है ? जिसे देखो वही इसकी बात करता है ! मगर देखा किसी ने नहीं कभी। मूर्खता के अतिरिक्त और तो कुछ नजर आता नहीं। उफफो ! अगर कहीं कोई ऐसा आदमी

मिल भी जाय जिसमें ईमानदारी जर्रा बराबर भी हो तो अवश्य ही वह मूर्ख निकलता है।"

सोफिया ने आहिस्ता-आहिस्ता अपनी पलकें उठाईं। भवों के साथ-साथ व्यंग्यपूर्ण ढंग से मुस्कराई और पूछा :

"आश्चर्य है, कभी तुम्हें कोई ईमानदार आदमी भी मिला ?"

"मैं खुद ईमानदार था अपनी जवानी में !" उसने कुछ अनजानी-सी आवाज में कहा और अपने सीने पर जोर से हाथ मारा। फिर लड़की के कंधे थपथपाये।

"अच्छा अब तुमही ईमानदार हो लेकिन भला इससे क्या फायदा ?" तुम ठहरीं बेवकूफ ! अब बताओ क्या हो ?"

उसने जोरदार कहकहा लगाया, "तो यह बात ··· बस तुमने सब मेरे ही जैसे लोग देखे हैं।·····खूब ढूँढी ईमानदार औरत तुमने।"

अब वह तैश में आकर चीखने लगा। उसकी आँखें शोले बरसा रही थीं।

"मैं खुद काम किया करता था और जिस कद्र बन पड़ता दूसरों की मदद भी किया करता। सच जानो दूसरे की सहायता करके मुझे बड़ी ही खुशी और इत्मेनान हुआ करता था। मैं यह भी चाहता था कि मेरे साथी भी, और मुझसे मिलने-जुलने वाले भी अच्छी तरह रहें और वातावरण जरा सुखद बन जाय। लेकिन मैं अन्धा नहीं हूँ। कोई क्या करे ? जिसको देखो वही चीलर की तरह खून चूसने को चिपटा रहता है।"

———

उदासी व विषाद इतना कष्टकर था कि रोने को जी चाहता था व्यर्थ ही दिल भारी-भारी-सा रहता, एक टीस सी उठती। क्या इन्हीं लोगों के साथ जीवन व्यतीत करूँ ? साफ मालूम होता था कि ये लोग एक स्थायी विपदा में फँसे हुए हैं। उनके दिल व दिमाग में कोई बुनियादी कमजोरी है, उनको देखकर अफसोस होता, दिल कटने लगता। उनकी मदद करने की कोई सूरत न देखकर तबियत निढाल होने लगती और खुद भी इस बेनाम रोग का असर होने लगता।

"बीस रुबल बुढ़ापे तक—है मंजूर ?"

"नहीं।"

'पच्चीस ? बोलो ! मौज करना, लड़कियाँ मिलेंगी और हर तरह के ऐश रहेंगे।"

जी चाहा कि मैं किसी सूरत से उसे यह समझाऊँ कि हमारा साथ-साथ रहना, मिल-जुलकर काम चलाना कितना असम्भव है। लेकिन मुझे समुचित शब्द ही न मिल सके और उसकी भारी, उत्सुक एवं अविश्वसनीय आँखों की ताब न लाकर मै कसमसा रहा था।

"छोड़ो भी बेचारे को।" सोफिया ने प्याली में चीनी डालते हुए कहा मालिक ने सिर का इशारा करते हुए कहा :

"अब चीनी क्यों ठूँसे जा रही हो इतनी ?"

"तुम क्यों जलते हो ?"

"अरी मूर्खा। यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। देखो तो कैसी फूलती जा रही हो ?·····अच्छा तो हाँ, हमारी तुम्हारी निभ नहीं सकती।"

"तुम हमेशा के लिए मेरे खिलाफ हो गये ?"

"मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे बर्खास्त करदो।"

"हूँ, हाँ·····ठीक है।" मालिक ने चुटकी बजाते हुए और कुछ सोचते हुए कहा, "अच्छा चलो चाय तो पियो।·····मिले थे तब तो कोई खुशी न हुई अब बिछुड़ रहे हो तो लड़-झगड़ कर नहीं।"

बड़ी देर तक खामोशी के साथ हम चाय पीते रहे। समावार एक सतुष्ट फाख्ता की भाँति गुड़गुड़ाता रहा और हवा निकलने का पंखा किस बूढ़ी भिखारिन की तरह ग़नग़नाए गया। सोफिया किसी गहरे सोच में पड़ी मुस्कराती रही और अपने प्याले में घूरती रही।

अचानक मालिक ने अपने उसी विनम्र स्वर में पूछा :

"सोवा, क्या सोच रही है ? छोड़ भी इस फिक्र को।"

उसने गर्दन उठाई और फिर ठण्डी साँस भरकर आहिस्ता-आहिस्ता बेसुरी आवाज में—एक बहुत ही बीमार औरत की आवाज में—वे शब्द कहे जो हमेशा-हमेशा के लिए मेरे हृदय पर अंकित हो गये।

"मैं सोच रही थी निकाह के बाद दुलहन और दूल्हा को गिरजे में एक साथ और अकेले बंद करके ताला लगा दिया जाना चाहिए। बस यही करना चाहिए।"

"हक़ थू !" मालिक ने जोर से थूका।" क्या फिजूल बातें सोचा करती है ये !"

"हाँ !" उसने भवें सुकेड़ कर और जोर देते हुए कहा, "मैं शर्त लगाती हूँ रिश्ता तब ही मजबूत होगा·····तब तुम जैसे सड़ियल·····।"

मेज को जोर से धक्का देते हुए, मालिक कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ।

"बन्द करो यह बकवास। फिर वही रट लगाना शुरू करदी ?"

वह फिर खामोशी में खो गई। और चाय के बर्तन उठाने लगी। मैं उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा अब चलदो।" मालिक ने रुखाई के साथ कहा, जाओ अच्छा हुआ।"

बाहर गली अब भी कुहरे में लिपटी हुई थी। मकानों की दीवारों से गदले आँसू बह रहे थे। अँधियारी परछाइयाँ भीगे हुए अँधेरे में अकेली भटक रही थी। कहीं दूर लोहारखाने में काम हो रहा था। वहाँ हथौड़ों की आवाज एक बंधे हुए वक्त के साथ लगातार सुनाई दे रही थी। और यह पूछती हुई मालूम हो रही थी, क्या ये लोग इन्सान हैं? क्या इसी का नाम जिन्दगी है?"

मैंने अपनी आखिरी तनख्वाह शनिवार को ली। और इतवार के दिन सब लड़कों ने मिलकर विदाई पार्टी का आयोजन किया। एक गंदे किन्तु आरामदायक और गर्म मयखाने में शातुनोव, आर्तेम, बंजारा नाजुक मिज़ाज लापतेव, सैनिक मिलोव, निकिता और वानुक उलानोव एकत्र हुए। उलानोव एक सस्ते मगर भड़कीले कपड़े का पतलून पहने था, लंबे जूतों में पाँयचे दबे हुए थे और नई कमीस पर बड़ी भड़कीली वास्कट थी जिसमें काँच के बटन लगे हुए थे। उसकी पोशाक की भड़क और नयेपन ने उसकी बेशर्म आँखों की उद्दण्डता माँद कर दी थी। उसके मुर्झाए हुए छोटे-से चेहरे पर कायरता के भाव अंकित थे। और उसकी एक-एक हरकत से सावधानी और घबराहट के लक्षण दिखाई देते थे। मानो उसे हर वक्त डर लगा हुआ हो कि कहीं उसके कपड़े ख़राब न हो जायँ या कोई आकर वास्कट उतरवाकर न ले जाय।

एक रोज पहले शाम को सबने स्नान किया था और आज बालों में खूब तेल लगा कर आये थे इस वजह से त्यौहार की-सी रौनक हो

गई थी ।

बंजारे ने उस पार्टी का सारा प्रबंध सम्भाल लिया था और नीलाम में बोली देने वाले ख़रीदार की तरह जल्दी-जल्दी आर्डर दे रहा था ।

"बाय ! थोड़ा गरम पानी और ।"

हम एक ही साँस में चाय भी पी रहे थे और वोडका भी । और इसी कारण हम सब पर एक घुटे-दबे नशे की हालत छाई हुई थी । लापतेव ने अपने कंधे से मुझे टहोका दिया और दीवार पर धकेलते हुए आग्रह किया :

"जाने से पहले हमें कुछ उपदेश देते जाओ, ऐसे कि आँखें खुल जायँ ।...तुम तो जानते ही हो हमें कितनी सख्त जरूरत है ।...सीधी-सादी और सच्ची बातें बताना, हाँ ।"

शातुनोव ने, जो मेरे रूबरू बैठा हुआ था निगाहें नीची करके मेज के नीचे देखते हुए निकिता को समझाया :

"इन्सान तो आने-जाने वाली ही चीज है ।"

"कहाँ जाय कोई ?" निकिता ने ठण्डी साँस भर कर कहा, "कैसे जाय कोई ?"

इनमें से हरेक मुझे इस तरह देखे जा रहा था कि मुझे उलझन-सी होने लगी और तबियत बड़ी उदास हो गई । शायद मैं दूर, कहीं बहुत दूर चला जाऊँ और फिर उन लोगों की सूरत भी कभी देखना नसीब न हो जो आज इस क़दर अजीब तरीके से मेरे नजदीक हैं और मुझे प्रिय हैं ।"

"लेकिन मैं तो यहीं शहर में रहूँगा ।" मैंने उनको बार-बार याद दिलाया । "हम तो मिलते रहा करेंगे ।"

लेकिन बंजारे ने अपनी स्याह लटों को झटका देते हुए और साथ-ही-साथ इस बात का ध्यान रखते हुए कि चाय जो वह बना रहा है सब प्यालियों में एक-सी बने, खाँस-खकार कर और गला साफ करके

कहा :

"हालाँकि रहोगे तो तुम इसी शहर में लेकिन अब तो हमारे खटमल तुम्हारे खून में हिस्सा न बटा सकेंगे।"

आर्तेम ने बड़ी मृदुल मुस्कान के साथ दबे स्वर में कहा:

"अब तुम हमारे गीत के बोल नहीं रहे।"

शराबखाने में गर्मी हो रही थी। स्वादिष्ट पदार्थों की खुशबूएँ नथुनों में घुसी चली आ रही थीं और तम्बाकू का धुँआ नीली-नीली धुँधली लहरों में तैरता फिर रहा था। कोने वाली खिड़की में से वसंत के साफ दिन की बुलंद आवाजें अंदर स्पष्टया सुनाई दे रही थीं और रंगबिरंगे फूलों से लदी हुई डालियाँ मस्त होकर झूम रही थीं।

मेरे सामने दीवार पर एक दीवार-घड़ी लगी हुई थी। उसका पेण्डुलुम मानो थक-हार कर रुक गया था। सुइयाँ गायब थीं और घड़ी का डायल शातुनोव के चौड़े-चकले चेहरे की तरह मालूम हो रहा था जो आज हमेशा से कहीं अधिक मलिन व उदास था।

"इन्सान मैं कहता हूँ आनी–जानी चीज है।" उसने अपना आग्रह दोहराया। "इन्सान अपने रास्ते तक आता है और गुज़र जाता है।"

उसके चेहरे पर जर्दी-सी आगई थी। एक मुस्कराहट के साथ उसकी आँखें आहिस्ता–आहिस्ता बन्द होगईं।

शाम के समय बाहर दरवाजे पर आकर बैठना और राहगीरों की सूरतें देखना, मुझे बड़ा अच्छा लगता है। अनजान लोग किन्हीं अज्ञात मंज़िलों की ओर लपके चले जा रहे हैं।...और उनमें से शायद कई ऐसे होंगे...जो नेकदिल भी हों। भगवान भला करे उनका।"

उसकी आँखें डबडबा आईं और पलकों में दो छोटे-छोटे आँसू झिलमिलाने लगे और फौरन ही गायब हो गये जैसे उसके तमतमाए हुए चेहरे पर पड़ते ही भाप बन गये हों। उसने भर्राई हुई आवाज में फिर कहा :

भगवान इन पर दया करे। और आओ अब हम दोस्ती प्रेम और घनिष्टता के लिए मदिरापान करें।"

हमने प्याले टकराये और पीगये। फिर एक-दूसरे को हवाई चुम्बन दिये और इस दौरान में मेज पर रखी हुई तमाम चीजों को गडमड कर दिया। मेरे सीने के अन्दर बुलबुलें चहचहाने लगीं और दिल में एक तीव्र वेदना अनुभव करते हुए मुझे उन तमाम लोगों पर बड़ा प्यार आया। बंजारे ने अपनी मूंछों पर हाथ फेरा और साथ ही हल्की सी व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट भी जो उसके होठों पर खेल रही थी, मिट गई। और उसने भी इसी तरह एक भाषण आरम्भ कर दिया :

"भगवान की कसम कभी-कभी तो भाइयो, अपना दिल भी इतनी शानदार लय निकालता है कि जैसे कोई मार्डविनियन बाजा बजा रहा हो। अब वहो दिन याद करलो जब हम सब सेम्योनोव के खिलाफ उठ खड़े हुए थे। और आज.....यहाँ अब...कोई कर ही क्या सकता है।" बस जी भर आता है। कोई अच्छी बात कहने को जी चाहता है। लेकिन हम अभागे कह नहीं सकते कि क्या हमारा जी चाहता है। भगवान साक्षी है मैं भले-मानुसों का-सा जीवन बिताऊँगा और किसी से जरा नहीं दबूंगा। तुम्हारा जो जी चाहे कहो। साफ-साफ कहो! जो कुछ मेरे विरुद्ध शिकायत हो मुँह पर कहो। मैं जरा भी बुरा नहीं मानूँगा यकीन ही नहीं करूँगा, इसलिए मैं नाराज़ नहीं होऊँगा। और मैं जिंदगी का सन्मार्ग जानता हूँ...ओसिप! तुमने लोगों के बारे में जो कुछ कहा था वह बिल्कुल सही है। मैं सोचा करता था भाई कि तुम कूड़मगज़ हो, लेकिन यह मेरी भूल है। तुम बिल्कुल ठीक कहते हो। हम सब अच्छे और योग्य लोग हैं।"

निकिता ने मरी हुई आवाज़ में उस रोज पहली बार बोलते हुए कहा :

"हम सब...बहुत ही नाख़श और बेज़ार हैं।"

जहाँ आनन्द-मग्न हो लोग हँसी-दिल्लगी कर रहे थे वहाँ उन शब्दों पर किसी ने भी ध्यान न दिया जैसे खुद यह बात कहने वाला उन सब लोगों में दिखाई ही नहीं दे रहा था। अब उसकी हालत बहुत ही खराब और खस्ता हो चुकी थी और वह एक तरफ बैठा ऊँघे जा रहा था, उसकी आँखें बुझ गई थीं। उसका झुर्रियोंदार चेहरा मुर्झाई हुई जर्द पत्ती की तरह नज़र आ रहा था।

"शक्ति तो मित्रता में है!" लापतेव आर्तेम से कह रहा था।

शातुनोव ने मुझ से कहा :

"ध्यान से सुनते रहो सब बातें और याद भी रखना। शायद इन्हीं से वह कविता बनती हो!"

"मुझे मालूम कैसे होगा कि कविता इन्हीं से बनती है?"

"पता चल ही जायगा तुम्हें तो।"

"और अगर इनसे कोई और ही कविता बनी तो?"

"कोई और?"

ओसिप ने मुझे संदेहपूर्ण दृष्टि से देखा और फिर क्षण भर संकोच करने के बाद कहा :

"और कोई कविता हो ही नहीं सकती। सब लोगों की खुशी व खुशहाली के लिए एक ही कविता है, कोई और है ही नहीं।"

"लेकिन मुझे पता कैसे चलेगा कि यह वही है?"

उसने निगाहें नीची करलीं और कुछ रहस्यमय ढंग से मुझसे कहा :

"देख लेना, फौरन पहचान जायेंगे सब!"

वानूक अपनी कुर्सी में कसमसाया और उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से उसने पूरे कमरे को जाँचा जो अब खचाखच भर चुका था। वह बोला :

"खिखी! क्या ही अच्छा हो अगर हम अब कोई गीत छेड़ दें!"

फिर अचानक ग़ड़ाप से अपनी कुर्सी में धँसते हुए उसने बड़ी

घबराई हूई आवाज़ में कहा :

"शिश...मालिक..."

बजारे ने वोडका की भरी हुई बोतल उठाकर झट मेज़ के नीचे छिपा दी। लेकिन फिर फौरन ही वापस मेज़ पर जमाकर रखते हुए झल्लाकर बोला :

"यह तो है ही शराबखाना !"

"है तो सही !" आर्तेम ने ज़रा ज़ोर से कहा। और फिर सब यों खामोश होकर बैठ रहे मानो किसी ने भीमकाय मालिक को मेज़ों के दरम्यान से बच-बचकर निकलते और हमारी महफिल की तरफ रोब-दार ढँग से बढ़ते हुए देखा ही न हो। आर्तेम ही ने सबसे पहले आँखें चार कीं। और अपनी कुर्सी से उठते हुए बहुत ही तपाक से कहा :

"नमस्कार, वासिली सेम्योनिच !"

दो-चार कदम के फासले पर रुकते हुए सेम्योनोव ने खामोशी के साथ हमारे समूह को अपनी मँजरी आँख से जाँचा। सब आदमियों ने भी चुपचाप सिर के इशारे से उसे सलाम किया।

"कुर्सी !" उसने धीरे से कहा।

सैनिक उछलकर खड़ा हो गया और उसने अपनी कुर्सी पेश की।

"वोडका पी रहे हो ?" उसने कुर्सी पर बैठकर एक लम्बी साँस लेते हुए कहा।

"चाय पी रहे हैं।" याश्का ने दाँत निकोसते हुए कहा।

"बोतलों में से निकाल कर ?"

सारे कमरे में एक सन्नाटा-सा छाया हुआ था जैसे कि अब किसी भी क्षण तू-तू-मैं-मैं शुरू हुई। लेकिन ओसिप शातुनोव ने उठकर अपना ग्लास वोडका से भरा और मालिक को पेश करते हुए बहुत ही नम्रता से कहा :

"हमारे साथ हमारे स्वास्थ्य के लिए पियो, वासिली सेम्योनिच।"

मालिक ने धीरे-धीरे और सोच-सोचकर अपना छोटा-सा बोझिल हाथ उठाया। हम सब की तबियतें बोझिल हो रही थीं। किसी को यकीन था कि यह हाथ जो उठ रहा है वह ग्लास को झटक कर फेंकने के लिए है या उठाने के लिए।

"क्यों नहीं ?" आखिरकार उसने ग्लास को अपनी उँगलियों के सहारे उठाते हुए कहा :

"और हम आपके स्वास्थ्य के लिए पियेंगे !"

मालिक ने अपनी मँजरी आँख से ग्लास को ग़ौर से देखा और अपने होंठ चूसते हुए कहा :

"क्यों नहीं, अच्छा...तो फिर पियो !"

उसने अपने मुँह के मेंढक जैसे सूराख में वोदका उँडेल ली। याञ्का का काला चेहरा दाग़दार-सा हो गया। कँपकँपाते हुए हाथों से जल्दी-जल्दी ग्लास भरते हुए उसने पाटदार आवाज़ में कहा :

"बुरा न मानना वासिली सेम्योनिच, हम भी आखिर इन्सान हैं, तुम तो जानते ही हो। तुम खुद भी तो मजदूर थे, तुमको तो मालूम होना चाहिए।"

"बस-बस, ज्यादा चालाक न बनो !" आक़ा ने बात काटते हुए ग़मनाक लहजे में कहा। बारी-बारी हममें से हरेक के चेहरे को उसने ग़ौर से देखा और फिर मेरे चेहरे पर नज़रें जमा कर ग्लानिपूर्वक कहा:

"इन्सान !··· ··तुम लोग इन्सान नहीं हो। तुम तो जेलखाने के पक्षी हो। लो अब आओ पियें।"

रूसी सुस्वभाव जो चालाकी से खाली नहीं होता उसकी आँख में टिमटिमा रहा था। और उस झिलमिलाहट ने हमारे दिलों में शोले भड़का दिये थे। हल्की-सी मुस्कराहट सब के चेहरों पर प्रकट हुई और उनकी आँखों में लज्जा व पश्चाताप एक परछाईं की नाईं थिरकने लगा।

हमने ग्लास टकराए और पी गये। बंजारा फिर फट पड़ा :

"मैं सच बोलना चाहता हूँ।"

"बस-बस, ज्यादा हाड-हाड न करो!" हमारे मालिक ने रूखा मुँह बना कर उसे रोकते हुए कहा। "कान के पर्दे फाड़े देता है। और तेरे सच की ज़रूरत किसे है? काम प्यारा है काम।..."

"ज़रा ठहरिए।—दिखाई नहीं दिया अपना काम मैंने कल-परसों?"

"सुनो-सुनाई बातें न दोहराओ। जरा अपने दिमाग पर भी जोर दो।"

"नहीं मैं तो कहता हूँ, बताओ मैंने काम करके नहीं दिखाया?"

"बस ऐसा ही होना चाहिए!"

"और ऐसा ही होगा भी।"

हमारे आका ने एक निगाह ही में सबको भाँपा और सिर हिलाते हुए फिर वही बात दोहराई।

"बस ऐसा ही होना चाहिए। मैं तो और कुछ नहीं कहता। अच्छी बात अच्छी है। ऐ सिपाही बच्चे, एक दर्जन बियर का आर्डर दो।"

यह आर्डर मानो विजय का नारा था। महफिल की जिन्दादिली और भी बढ़ गई। हमारे मालिक ने अपनी आँखें बन्द करलीं और बोला :

"अजनबियों के साथ तो मैंने वोद का की नदियाँ पी डाली, लेकिन खुद अपने भाई-बन्दों के साथ महफिल का रंग जमता देखे जमाना बीत गया।"

हमदर्दी के भूखों दिलों, जिन्दगी की खुशियों से वंचित दिलों पर तो इस वाक्य ने आग पर तेल का काम किया। सब-के-सब एक दूसरे से और भी सटकर बैठ गये। शानुनोव ने एक आह भर कर मानो

सबकी ओर से कहा :

"हम तो तुम्हें ज़रा भी नुक्सान नहीं पहुँचाना चाहते थे मगर आखिर करते क्या ? तंग आ गये थे जिन्दगी से। पिछले जाड़े बड़ी मुसीबत से कटे। बस यही वजह है।"

मैंने महसूस किया कि मिलाप के इस उत्सव में मेरी उपस्थिति खटकती है और मेरे ही कारण दृश्य कुछ असहाय-सा होता जा रहा। शराब फौरन ही उन लोगों के सिर पर सवार हो गई और वे मालिक के ताँबे जैसे चेहरे को देख-देखकर मस्त हुए जा रहे थे-और मुझे तो यह चेहरा भी कुछ असाधारण-सा प्रतीत हो रहा था। मंजरी आँख में दयालुता, विश्वास और बुद्धिमत्ता की चमक दिखाई दी।

वह बड़े धीरे-धीरे और लापरवाही से बोल रहा था जैसे वह आदमी जिसे मालूम हो कि उसका मतलब फौरन समझ लिया जायगा। और वह बैठा अपनी घड़ी की चाँदी की जंजीर अपनी उँगलियों में लपेट रहा था।

"यहाँ कोई अजनबी नहीं है···हम सब हमवतन है। मेरे ख्याल में सबका वतन एक ही है।"

"सो तो है ही। हमवतन !" लापतेव ने खुशी में काँपती हुई आवाज में कहा।

"भेड़ियों की-सी आदत के कुत्ते कौन-कौन चाहेगा ? ऐसा कुत्ता घर में रखने योग्य तो होता नहीं।"

सैनिक ने अपनी पूरी आवाज से चीखते हुए कहा :

"ख-ब-र-दा-र ! सुनो !"

बंजारे ने आँख बचाकर अपने मालिक की तेज़ आँखों में झाँककर कहा :

"तुम समझते हो कि मैं कुछ नहीं समझता ?"

महफिल का रंग और भी जम गया। बियर की एक दर्जन बोतलों

का और आर्डर दिया गया। ओसिप ने मेरी तरफ झुककर लड़खड़ाती हुई जवान में कहा :

"हमारा मालिक पादरी है। बिल्कुस लाट पादरी।···लाट पादरी मठाधीश होता है।"

"यहाँ बुलाया किसने उसे ? कमबख्त ने सारा मजा किरकिरा कर दिमा।" आर्तेम ने जरा आवाज को दबाकर कहा।

हमारा मालिक मशीन की तरह बियर के ग्लास हलक में उँडेलता रहा और बड़ी खामोशी के साथ। कभी-कभी बीच में बडे रौब के साथ खँखार कर गला साफ कर लेता जैसे अभी कुछ कहने ही वाला है। उसने मेरी मौजूदगी पर कोई ध्यान नहीं दिया। कभी-कभार जब उसकी उचटती हुई नजर मेरे चेहरे पर पड़ती तो खाली-खाली आँखों को जैसे कुछ दिखाई ही न देता।

मैं चुपके से उठकर बाहर खिसक आया। लेकिन आर्तेम लपक कर मेरे पीछे आया। वह खूब डटकर पिये हुए था। फूट-फूट कर रोने लगा और सुबकियाँ लेते हुए बोला :

"हाय भाई।·····मैं तो अकेला रह गया अब।·····बिल्कुल अकेला !···"

राह चलते मालिक से कई बार भेंट हुई। हमने एक दूसरे को सलाम किया। अपने मोटे-से हाथ से अपनी गरम टोपी उठाकर वह बड़ी संजीदगी के साथ कहता :

"जिन्दा हो ?"

"जी हाँ, जिंदा हूँ।"

"बस यही चाहिए !" वह इस तरह कहता जैसे मंजरी दे रहा

है। और मेरे कपड़ों को एक आलोचक की हैसियत से जाँचते हुए अपने भारी-भरकम जिस्म को लुढ़कता आगे बढ़ जाता।

ऐसी ही एक मुलाकात एक बार शराब खाने के सामने हुई और उसने सुझाव दिया :

'कहो बियर पियें तो कैसी रहे ?"

हम तीन सीढ़ियाँ उतर कर तलघर नुमा कमरे में पहुँचे। उसने वहाँ सबसे ज्यादा अन्धियारा कोना तलाश करके, एक भारी-से स्टूल पर बैठकर चारों तरफ नजर दौड़ाई जैसे मेजें गिन रहा हो। हमारी मेज के अलावा वहाँ पाँच मेजें और थीं। सब पर मटियाले-से लाल रंग के फटे-पुराने मेज पोश बिछे थे। एअ ठिगनी-सी बूढ़ी औरत काली शाल ओढ़े शराब खाने के मालिक की जगह बैठी मोजे बुन रही थी।

सफेद पत्थर की दीवारों पर तस्वीरों के चौखटे सजे हुए थे एक-में भेड़िये के शिकार का दृश्य था और दूसरी में जनरल लोरिस मेलिकोव का कनकटा चेहरा, तीसरी में पेरूशलम का एक दृश्य था और चौथी में दो नग्न लड़कियों की तस्वीर थी। इनमें से एक लड़की की चौड़ी छाती पर बड़े स्पष्ट शब्दों में यह इबारत लिखी हुई थी : "वीरा गालानोवा, विद्यार्थियों की प्रेमिका, मूल्य इकोपेक और दूसरी लड़की की आँखे किसी ने खोद लो थीं। उन बेहूदा और बेमौके तस्वीरों ने जो सारे वातावरण पर धब्बों की तरह पड़ी हुई थीं, तबियत को उदास कर दिया।

दरवाजे के शीशे में से एक नई इमारत की हरी छत के ऊपर शाम के समय का निर्मल आकाश दिखाई दे रहा था। और बहुत ऊपर असख्य कौवों कीं डारें उड़ती चली जा रही थीं।

मालिक ने हाँप-हाँपकर साँस लेते हुए उस असुंदर, भोंडे स्थान को जाँचा और जम्हाइयाँ लेते हुए सवाल शुरू कर दिये कि मेरी क्या आमदनी है, अपनी नौकरी से खुश भी हूँ या नही। उसकी तबियत

दरअसल बातें करना न चाहती थी और खास रूसी किस्म की बेज़ारी और उक्ताहट उसके सिर पर सवार थी। आहिस्ता-आहिस्ता चुस्कियाँ लेकर उसने बियर पी और खाली ग्लास मेज पर रखकर अपनी उंगली से एक ऐसा झटका दिया कि अगर मैं न थाम लू तो ग्लास फर्श पर गिर कर चकनाचूर हो जाय।

"क्यों पकड़ा ?" मालिक ने शाँतिपूर्ण स्वर में पूछा "गिर जाने दिया होता।···छन्न से गिरकर टूट जाता। मैंने दाम दे दिये होते !···"

गिरजाघर की घंटियाँ शाम की नमाज़ के लिए ज़ोर-ज़ोर से बजने लगीं और आस्मान में उड़ते हुए कौवों की पंक्तियों में खलबली सी मच गई।

"मुझे ऐसी ही जगह पसद है।" सेम्योनोव ने बातचीत जारी करते हुए कहा यहाँ सुकून है।" और मक्खियाँ भी नहीं हैं मक्खियाँ धूप और उसकी गर्मी पसंद करती हैं।"

अचानक उसने घृणापूर्ण ढंग से मुस्कराते हुए कहा :

'वह मूर्खा सोवका चली गई। अब उसने एक छोटे पादरी से इश्क कर लिया हैं। सिर गंजा, मैले-कुचैले, फटे कपडे-यह है हुलिया उसका और शरारी पक्का है। वैसे विधुर है। उसे मन्त्र सुनाया करता है और वह बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोया करती है।···मुझ पर अब चीखती चिल्लाती है।·····लेकिन मैं·····मुझे क्या परवाह ? मुझे उसी में मज़ा आता है।"

कोई शब्द उसके गले में आकर फंस गया और उसकी आवाजा रुक गई। फिर उसने झटके ले-लेकर बयान शुरू किया :

"मेरा विचार था कि तुम दोनों की शादी करा दूँ—तुम्हारी सोफिया के साथ। ·····न जाने तुम दोनों की गृहस्थी कैसी होती ?·····"

इस बात से तो मुझे भी बड़ा आनन्द आया और मेरी हंसी पर

उसने भी फदक-फुदक कर छ-छोटे कह कहे लगाये ।

"शैतान !" उसने अपने कंधे फुदकाकर गुर्राते हुए कहा, "पावन शैतान । हमारे भगवान के बनाये हुए नहीं···छि··· ।"

उसने अपनी रंग-बिरंगी आँखों के छोटे-छोटे आँसू अपनी उँगली से पोंछ डाले ।

"ओसिप के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है ? याद है ना वह ? नौकरी छोड़ दी उसने, गधा कही का·····"

"गया कहाँ वह ?"

"कहते हैं तीर्थ यात्रा को गया है ।···जितना अनुभव उसे है और जो उम्र उसकी है--अब तक वह नानबाई हो गया होता कभी का अच्छा कमकर है वह । अपना काम खूब अच्छी तरह जानता है ।···"

सिर हिलाकर उसने चन्द घूँट बियर के पिये और आँखों पर हाथ का साया करते हुए बाहर देखकर बोला :

"देखो तो कितने कौवे हैं । शादी के दिन हैं—अच्छा भाई बड़-बड़िये कौन-सी चीज़ फिजूल है और कौन सी वास्तव में जरूरत की ? कोई नहीं जानता भाई, ठीक-ठीक कोई नहीं जानता···छोटे पादरी ने कहा था, जरूरत की सब चीजें आदमियों के लिये हैं और फालतू चीजें भगवान के लिए ।'·····वह पिये हुए था उस वक्त । अपनी बात न्यायोचित ठहराने के लिए सब कोई-न-कोई बहाना ढूँढ ही लेते हैं ।···देखो तो सही शहर में कितने फालतू लोग हैं । सब खा भी रहे हैं, पी भी रहे हैं । लेकिन वह खाना-पानी है किसका, क्यों ?···हाँ और यह सब आता कहाँ से है ?"

वह हड़बड़ाकर एक दम उठ खड़ा हुआ । एक हाथ जेब में डाला और दूसरा मेरी तरफ बढ़ाया । वह कुछ खोया-खोया-सा नज़र आता था ! और उसकी आँख किसी फिक्र में सिकुड़ी हुई थी ।

"अब चलना चाहिए, अच्छा नमस्ते ।"

उसने एक भारी-सा बटुआ निकाला और उसके अन्दर उँगलियों चलाते हुए इत्मीनान के साथ कहा :

"अभी पिछले दिनों पुलिस इन्सपैक्टर तुम्हारे बारे में मुझसे पूछ-गछ कर रहा था।"

"चाहता क्या था वह ?"

मालिक ने अपनी सिकुड़ी हुई भवों में से देखते हुए लापरवाही के साथ कहा :

'तुम्हारे चाल-चलन और तुम्हारी जबान के बारे में पूछ रहा था। मैंने कह दिया कि तुम्हारा चालचलन खराब है और जबान कैंची की तरह चलती है ! अच्छा, चल दिये !"

दरवाजा पूरा खोलकर और अपनी हाथी जैसी टाँगें सीढ़ियों पर जमाकर रखते हुए उसने अपनी तोंद बाहर बाजार में धकेल दी।

उसके बाद फिर मेरी उससे मुलाकात नहीं हुई। मगर दस वर्ष बाद- मुझे योंही संयोगवश मालूम हुआ कि उसकी कारोबारी जिन्दगी किस तरह खत्म हुई। सन्तरी—( मैं उन दिनों राजनैतिक कैदी था ) मेरे लिये कुछ सौदा अखबार में लपेट कर लाया और उस पुर्जे मे मैने यह खबर पढ़ी :

"गुड फ्राइडे के त्यौहार पर हमारे शहर में एक बड़ी ही विचित्र घटना घटी। वासिली सेम्योनोव 'बन' और बिस्कुटों की बेकरी का मालिक जो क्षेत्रों में बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति रुआन्सी सूरत बनाये शहर में अपने ऋणदाताओं के घरों पर गया और उसने रो-रोकर उन्हें विश्वास दिलाना चाहा कि वह बिल्कुल तबाह हो गया है और उसने उनसे प्रार्थना की कि वे उसे जेल भिजवादें। उस व्यक्ति के कारोबार से जो खूब चलता था, सभी लोग किसी ने भी उस पर विशवास न किया। और त्यौहार के दिन जेलखाने में गुजारने की उसकी बेमौके इच्छा से लोगों ने बड़ा आनन्द लिया। इस अदभुत स्वभाव वाले व्यक्ति के

सनकीपन से सभी परिचित थे । लेकिन चन्द ही दिनों बाद शहर भर के व्यवसायिक वर्ग में बड़ी खलबली मच गई क्योंकि पता चला कि सेम्योनोव कोई पचास हजार रुबल का कर्जा छोड़कर लापता हो गया है और अपनी हरेक बिकाऊ चीज ठिकाने लगा गया है। निस्संदेह उस पर धोखे बाजी से दीवालिया हो जाने का मुकदमा कायम होगा।"

इसके बाद फिर दीवालिया भगोड़े की विफल तलाश, की परेशानी और सेम्योनोव की विभिन्न विचित्र हरकतों का ब्यौरा दिया गया था। मैंने कागज के इस मैले-कुचैले और चिकने पुर्जे को पढ़ा और खिड़की के सामने जाकर विचारों के तूफान में खो गया। धोखे बाजी, अदूर दर्शी एवं दुर्भाग्यपूर्ण दीवालियापन की घटनाएँ जीवन से पलायन, कायरता, और अकर्मयता के अनुभव की घटनाएँ रूस में बहुत आम थीं ।

क्या परेशानी है यह, कैसी मुसीबत है ?

एक आदमी है जो जिंदा है और कुछ सृजन करना चाहता है अपनी कामनाओं और अपने विचारों की रौ में । और सैकड़ों लोंगों का दिमाग ख्वाहिश और मेहनत शामिल करता है, जबरदस्त इन्सानी मेहनत हजम कर जाता है फिर अचानक और धोखा देकर सब कुछ अधूरा और अपूर्ण छोड़ देता है और अक्सर खुद अपने आप भी जिंदगी की हल चल से निकल भागता है। और इस प्रकार इन्सान के गाढ़े पसीने की मेहनत बरबाद हो जाती है। उसका नामोनिशान तक बाकी नहीं रहता । और अक्सर दुःख, दर्द भरी मेहनत व मशक्कत की कली बिन खिले ही मुर्झा जाती है।

जेलखाने की दीवार पुरानी और नीची है और भयावनी भी नहीं है ! इस दीवार के बाहर, करीब ही वसन्त ऋतु के आनंददायक नीलाकाश में लाल ईटों का एक ऊंचा अम्बर नजर आता है। जो शराब

के कारखाने के मालिक और इजारादार की मिल्कियत है। उसके समीप ही बल्लियों के और ऊँचे-ऊंचे मचानों के झाड़-झंकाड़ के दरम्यान मकानों की एक नई इमारत बन रही है जो किराये पर उठाई जाएगी।

इससे भी आगे एक उजाड़ मैदान फैला हुआ है जहाँ कहीं-कहीं गहरी लीकें हैं जिनके किनारों पर सब्ज़ा उग आया है। और इधर दाहिनी ओर एक खँदक के ऊपर झुकी हुई चट्टान पर यहूदियों का कब्रिस्तान है जिसके पास ही दरख्तों के एक अंधियारे झुण्ड पर मुर्दनी छाई हुई है। मैदान में सुनहरी रंग के फूल झूम-झूमकर आपस में सरगोशियाँ कर रहे हैं। एक मोटी-सी काली मक्खी खिड़की के मैले-कुचैले शीशे से अपना सिर टकरा-टकरा कर दीवानी हो रही है और मुझे मालिक का साधारण सा वाक्य याद आता है :

"मक्खियाँ धूप पसन्द करती हैं, उसकी गर्मी।..."

सहसा शराब खाने का अन्धकार मय तहखाना मेरी आँखों में फिर जाता है जहाँ खूब सूरत और शोख रंगों की बेजोड तस्बीरें लगी हुई थीं—भेड़िये के शिकार का दृश्य, येरूललम का शहर, वीरा गालानोवा मूल्य तीन कोपेक और कनकटा जनरल।

"मैं इस किस्म की जगह पसन्द करता हूँ।" मालिक ने ऐसे स्वर में कहा था जिसमें इन्सानी ईमानदारी की आवाज़ थी।

मैं उसके बारे में सोचना न चाहता था। इसलिए मैंने खिड़की से बाहर मैदान के पार नीलमूँ जंगल को घूरना शुरू कर दिया जिसके अखिरी सिरे पर महान वोल्गा नदी बहती है—ऐसा मालूम होता है कि वह आत्मा को परिष्कृत करती हुई, निरर्थक भूत के चिन्ह धोती हुई बहती चली जा रही है।

"कौनसी चीज फिजूल है और कौनसी जरूरत की ?" मालिक का यह वाक्य मेरे दिमाग पर आरे जला रहा था।

मेरी आँखों में उसका भारी-भरकम जिस्म बग्घी की गदी पर लोटता-पोटता, उछलता-थिरकता फिर रहा है। और वह गाड़ी में से ज़िन्दगी की तेज धार को अपनी मॅजरी और चमकीली आँख से देखता नज़र आ रहा हैं। येगोर का लकड़ी की मूर्ति बना हाथ फैलाये रास पकड़े बैठा है और अक्खड़ मिजाज कत्थई घोड़ा अपनी मजबूत टाँगें झटकाता और सड़क के ठण्डे पत्थर पर अपने सुमों को खटपटाता चला जा रहा है।

"येगो,···मैं किसका हूँ ?···एक भेड़ निगल जाता है···तोंद भर लेता है—लेकिन कसम भगवान की वह फिर भी मुसीबत में ही रहता है।"

सीने में किसी चीज़ के उठने से दम घुँटने का-सा एहसास हो रहा था जैसे किसी व्याकुल व पीड़ित भावना के कारण कलेजा मुँह को आ रहा हो उस शख्स के लिए जो नही जानता कि अपना क्या बनाये। जो संसार में अपना कोई स्थान ही तलाश नहीं कर पाता। केवल किसी 'रँगरूट' के आलस्य और दासतापूर्ण चुहलों ही से नहीं बल्कि शायद शक्ति की हद से ज्यादा बहुतायत के कारण भी।

चाहे कोई हो ऐसी हालत में फिरफ्तार होकर बहुत ही तकलीफ होती है। और तरस आता है। अन्धी शक्ति के सर्वनाश पर दया आती है। वह बहुत ही तीब्र और परस्पर विरोधी भावनाओं को उकसाता है जैसे कोई नटखट बालक अपनी मा के दिल में अगर अनिच्छा से को बालक कभी प्यार करना पड़े तो उसके बजाय वह उसे सज़ा देना बेहतर समझती है।·····

नई इमारत के सुर्ख ढेर के चारों ओर वल्लियों और मचानों के झाड़-झंखाड़ पर राज-मजदूर चीऊंटियों की तरह रेंगते नज़र आ रहे हैं। इमारत की दीवारों की चोटियों पर छोटी-छोटी शहद की मक्खियों

की भाँति चिपटे हुए हैं। और इमारत को दिन-ब-दिन ऊँची करते जा रहे हैं।

और मज़दूरों और उनकी व्यस्तनाओं की इस धमाधमी को देखते देखते मुझे यह विशाल और पेचीदा संसार की भूल-भुलैयों के घने जाल में एक अकेला मुसाफिर ओसिप शातुनोव आनंदमग्न हो चलता, अविश्वस्त निगाहों से चारों ओर घूरता और हर बात को शौक से और पूरे ध्यान से सुनता नज़र आता है। कि शायद कहीं वे शब्द मिल जाएँ जो 'जनसाधारण की खुशी' की कविता रचें।

---